सद्गुरवे नमः

भजनावली

अभिलाषदास

सद्गुरवे नमः

भजनावली

(एक सौ पचासी पदों का संग्रह)

करो प्रेम से नित्य सत्यसंग जाई।
मिले बोध निज रूप उर शान्ति आई॥
हटै आवरण मोह-दुर्धर-बली का।
करो पाठ-चिंतन सु-भजनावली का॥

अभिलाषदास

प्रकाशक

बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर

राजादरवाजा, वाराणसी

सत्कर्षीराब्द ५७७

वि० २०३२ सन् १९७५

तृतीयावृत्ति

मूल्य ६=००

मुद्रक

श्री विश्वेश्वर प्रेस

बुलानाला, वाराणसी

निवेदन

बहुत दिनों से प्रेमियों की यह चाह थी कि मेरे विभिन्न ग्रन्थों में आये हुए पदों का एक संग्रह प्रकाशित हो जाय। पूज्य श्री गुरुदेव जी ने भी आज्ञा दे दी, अतएव साधु सजीवनदास जी ने उक्त पदों का संग्रह कर डाला, वह समयानुसार प्रकाशित होकर आपके कर कमलों में उपस्थित है। वैराग्य-सजीवनी के अन्त में आये हुए पदों को तथा सन्त-महिमा के पदों को भी अबकी द्वितीयावृत्ति में इसमें छपा दिये गये हैं।

इसमें आये हुए हमारे सभी पद एक सौ एकहत्तर हैं, उन्हें 'भक्ति' 'उपदेश तथा चेतावनी' 'बोध' और 'सामूहिक' इन चार खण्डों में बाँट दिये गये हैं। विषयानुसार इसमें खण्ड और बनाये जा सकते थे, परन्तु कुछ कारण-वश वह हो न सका। जो हुआ भी वह भी व्यतिक्रम पूर्ण ही है। रहा जो पद जहाँ है, वहाँ से लाभ उठाया ही जा सकता है। जिज्ञासु तो लाभ ही उठाते हैं, व्यतिक्रम पर ध्यान नहीं देते।

ध्वनि के अनुसार पदों का वर्गीकरण नहीं किया गया और न पदों के साथ ध्वनि के नाम ही दिये गए हैं। सभी भजनों के शीर्षकों मे केवल 'पद' रख दिये गये हैं। गाने वाले ध्वनि की पहचान स्वयं कर लेंगे—ऐसा विचार कर यह कार्य उन्हीं पर छोड़ दिया गया है।

इस ग्रन्थ के अन्त में चौदह पद अन्य महापुरुषों के हैं, जिनमें उनके नाम आये हैं। इसे 'अन्य पद' के नाम से रख दिया गया है।

जीवन पर भजनों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्यमय पदों का तदाकारता-पूर्वक गायन करने से, मन निर्मल हो जाता है। जिज्ञासुजन इससे लाभ उठायेंगे ही, पूज्य गुरु-सन्तों से याचना है कि इन पदों के अनुसार ही जीवन पर्यन्त इस दास का मन रंगा रहे।

वैशाख कृष्ण
२०२४

विनम्र
अभिलाष दास

सूचीपत्र

१ भक्ति खण्ड

क्रमांक	पद	पृष्ठ
१	जय गुरुदेव नमों गुरु सन्त	१३
२	हे प्रभू ! एक तू ही सहारे	१४
३	नमों दीनबन्धू चरण में तुम्हारे	१५
४	संसार कठिन दुःख से जल्दी बचाइए	१६
५	जय पारख ज्ञान प्रबोध करं	१७
६	साधु गुरू जय सन्त महान	१८
७	गुरुवर तुम्हारी महिमा, अनुपम अपार है	१९
८	भक्ति की महिमा अपारा हो	१९
९	शरण मिले हैं गुरु ज्ञाना हो	२०
१०	मंगल मूल अमंगल हारी	२१
११	हे सद्गुरु हे सुख दातार	२२
१२	दर्शन दे दो हे गुरुदेव !	२३
१३	हमें भी प्रभूजी अपना समझकर	२४
१४	जो हम हैं पतित तो हो पावन पतित तुम	२५
१५	प्रभू ! वश तेरी है इक आश	२६
१६	जय गुरु-सन्त ! मंगल मूल	२७
१७	हरचो मम पीर दरश गुरु दइके	२७
१८	जय हे साधु सद्गुरु देव	२८
१९	दुःख हर आप सद्गुरु देव	२८
२०	मन ! करु प्रेम गुरु पद कंज	२९
२१	गुरु बिन को करे भव पार	२९
२२	मन ! करु प्रेम शुचि सत्संग	३०

२—उपदेश तथा चेतावनी खण्ड

३—बोध खण्ड

४—सामूहिक खण्ड

अन्य पद

सद्गुरवे नमः

भजनावली

प्रथम भक्ति खंड

❀

१. पद
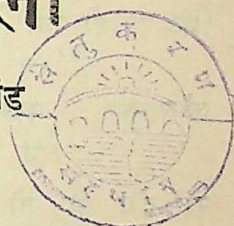
जय गुरुदेव नमो गुरु सन्त,
जय गुरुदेव नमो गुरु सन्त ।।टेक।।
जग सुख से स्नेह हटाये,
अजर अमर अमृत पद पाये।
मन गति तोड़ि विमल विचरन्त,
जय गुरुदेव नमो.........।।१।।
दया शील सन्तोष विचारा,
विरति विवेक सत्य आचारा।
सद्गुण भूषित अमल अनन्त,
जय गुरुदेव नमो.........।।२।।
सबको सहि निज काज बनाते,
नहिं काहू को दोष लगाते।
राग द्वेष को तजि स्वच्छन्द,
जय गुरुदेव नमो.........।।३।।

जड़ को जड़ जिव को जिव जाने,
बन्धन मुक्ति भले पहिचाने।
जग वासना किये सब अन्त,
जय गुरुदेव नमो ....।।४।।
प्रिय भाषी जग भोग उदासी,
शत्रु मित्र से सदा निराशी।
जीवन्मुक्त परम निर्मन्त,
जय गुरुदेव नमो ....।।५।।
राग द्वेष से जो अति पारा,
ताहि चरण अभिलाष अधारा।
हर लो मेरो सब दुख द्वन्द्व,
जय गुरुदेव नमो गुरु सन्त।। ६ ।।

२. पद

हे प्रभू ! एक तू ही सहारे,
मेरी नैया लगा दो किनारे।।टेक।।
काम आदिक मनोमय की धारा,
डूबता हूँ न पाता किनारा।
वासना वायु झोके हिलारे,
मेरी नैया..............।।१।।
बाँस बल्ली न पतवार ही है,
घाट औघट बही जा रही है।
होके मल्लाह कर दो सहारे,
मेरी नैया..........।।२।।

न है परमार्थ साधन की शक्ती,
ना है वैराग्य ना ज्ञान भक्ती।
न तो है और कोई हमारे,
मेरी नैया.........॥३॥
हूँ अनादी से दुखड़ा उठाया,
शान्ति तेरे बिना मन न पाया।
करदो हे नाथ! भव दुखसे न्यारे,
मेरी नैया.........॥४॥
नाथ! मैं आफतों का हूँ मारा,
धर्म तेरा है करना सहारा।
होके अभिलाष निर्मद पुकारे,
मेरी नैया.........॥५॥

३. पद

नमो दीनबन्धू चरण में तुम्हारे॥
मेरी नाव को नाथ! कीजै किनारे॥टेक॥
महा काम की है प्रबल वेग धारा,
फटी नाव का वासना वायु झारा॥
टुटे बाँस बल्ली है पतवार नारे,
नमो दीनबन्धू चरण में तुम्हारे॥१॥
है अज्ञान की रात्रि तम पूर्ण छाई,
अविद्या के घनघोर बारिद सुहाई॥
सुखाध्यास विद्युत चकाचौंध छारे,
नमो दीनबन्धू चरण में तुम्हारे॥२॥

अमित कामना वृष्टि भव भोग जाड़े,
हैं सत्संगसाधन के तट बल बिगाड़े।
ये चारों दिशा से कुसंग बाढ़ भारे,
नमो दीनबन्धू चरण में तुम्हारे ॥३॥
हैं क्रोधादि जल जन्तु विष पूर्णकारी,
महा मोह की है भँवर वेग भारी।
मगरमच्छ हैं राग वो द्वेष धारे,
नमो दीनबन्धू चरण में तुम्हारे ॥४॥
न कोई है आगे न पीछे सहारा,
मेरी डूबती नाव का मध्य धारा।
बनो नाथ कड़िहार कर दो किनारे,
नमो दीनबन्धू चरण में तुम्हारे ॥५॥
सकल भाँति से है विकल चित्त मेरा,
अनाश्रय दुखी दास अभिलाष तेरा।
दिया खोल लंगर तिहारे सहारे,
नमो दीनबन्धू चरण में तुम्हारे ॥६॥

४. पद

संसार कठिन दुःख से जल्दी बचाइए,
हे सद्गुरु ! इस पतित दास को निभाइए ॥टेक॥
सुत दार मात तात सभी स्वार्थ पगे हैं।
करके विचार देखता कोई न सगे हैं॥
भव पन्थ सगे मीत की ममता छुड़ाइए ॥१॥
त्रय ताप जनम मरण देहोपाधि दुख घने।
अरु काम क्रोध लोभ मोह शोक चित सने॥
निज रूप बोध दान दे स्थिति टिकाइए ॥२॥

प्रमदा प्रमोद पन्थ मन गढ़न्त जग रहे।
खानी वो बानी धार बीच नाथ हम बहे॥
डुबती हमारी नाव किनारे लगाइए॥३॥
इस नाट्य नगर जगत में कोई न सुखी हैं।
कोई न कोई भाँति राव रंक दुखी हैं॥
संसार मोह जाल की फांसी छुड़ाइए॥४॥
सब भाँति से अनाथ आपके अधार हूँ।
अच्छा हूँ या बुरा हूँ नाथ! हूँ तुम्हार हूँ॥
अभिलाष अधम बाल को पावन बनाइए॥५॥

५. पद

जय पारख ज्ञान प्रबोध करं,
गुरु मुक्त स्वरूप दयालु वरं॥ टेक॥
बहु संशय धार प्रभाव बहे,
बिषया बन भूलि के दुःख सहे।
सब संशय शोक विमोह हरं,
जय पारख ज्ञान प्रबोध करं॥ १॥
उर मोह निशा घनघोर रहा,
नहिं सूझत पंथ हमार कहां।
रवि बोध उगाय नशे तिमिरं,
जय पारख ज्ञान प्रबोध करं॥ २॥
जग भेष के जीव मिले जितने,
मोहिं ठेलि के दूर किये तितने।
गुरुदेव लगाय लिये शरणं,
जय पारख ज्ञान प्रबोध करं॥ ३॥

गुरु पूर किये अभिलाष मेरा,
उपकार न भूल सकूँ मैं तेरा।
गुरु बोधक देव स्वमोक्ष परं,
जय पारख ज्ञान प्रबोध करं ॥ ४ ॥

६. पद

साधु गुरू जय सन्त महान,
हमें बता दो सच्चा ज्ञान ॥ टेक ॥
जड़ चेतन का भेद लखा दो,
पंच विषय आसक्ति मिटा दो,
कलह कल्पना दूर भगा दो,
निर्भय कर दो शान्त समान ॥ १ ॥
नश्वर तन का अहं नशा दो,
अविनाशी में लक्ष्य बसा दो।
आवागमन से मोहि बचालो,
दे दो मुक्ति अक्षय पद दान ॥ २ ॥
नारि पुत्र गृह कुटुम कबीला,
सुख सम्पत्ति सपना की लीला।
तिनकी ममता मोह छुड़ाकर,
कर दो भक्ती में बलवान ॥ ३ ॥
मद्य मांस मैथुन पर नारी,
और अनेकों व्यसन विकारी।
कुसंग कुबुद्धि त्यागि मद सारी,
सरल सुशील सादगी ध्यान ॥ ४ ॥
चोरी हिंसा वो व्यभिचारी,
इर्षा क्रोध मान छल गारी।

निन्दा झूठ सभी हम त्यागें,
तन मन शुद्ध करें निर्मान ॥ ५ ॥
सत्संगत सद्ग्रन्थ विचारें,
सदाचार सद्गुण को धारें, ।
जल्दी अपना चरित सुधारें,
यह अभिलाष यही अर्मान ॥ ६ ॥

७. पद

गुरुवर तुम्हारी महिमा, अनुपम अपार है ॥टेक॥
मानव शरीर नौका, मैं पथिक जीव हूँ ।
गुरु कर्णधार होकर, कर बेड़ा पार है ॥ १ ॥
खानिबानि मह जाल, लागतअतिशय कराल ।
ताको परखाय देव, सारासार है ॥ २ ॥
वासना संशय समीर, छूटता न आवे धीर ।
जन्म मरण लाग रहत, बार बार है ॥ ३ ॥
गुरुवर तुम हो दयाल, कष्ट से जल्दी निकाल ।
दीन ये अभिलाष बाल, की पुकार है ॥ ४ ॥

८. पद

भक्ति की महिमा अपारा हो,
जन जानहि कोइ ॥ टेक ॥
सेवरी नारि जाति के भिल्लिन,
भक्ति से गुण उजियारा हो ॥ १ ॥
दासी पुत्र कहत सब नारद,
भक्ति से ऋषि तन धारा हो ॥ २ ॥

नाभा भक्त श्वपच कै देही,
पूजित भक्ति अधारा हो ॥ ३ ॥
बिन गुरुभक्ति नरक परै प्राणी,
पुनि जावै यमद्वारा हो ॥ ४ ॥
बहुत जन्म कै भाग्य उदय जेहि,
तेहि गुरु मिलैं अधारा हो ॥ ५ ॥
तन मन बचन शुद्ध भक्ती किये,
सत्संगत गुरु द्वारा हो ॥ ६ ॥
दुर्मति कुसंग सकल अघनाशै,
यम फन्दा निरुवारा हो ॥ ७ ॥
कह अभिलाष भक्ति के कीन्हें,
मिले मुक्ति निरधारा हो ॥ ८ ॥

९. पद

शरण मिले हैं गुरु ज्ञाना हो,
मेरो भाग जगी है ॥ टेक ॥
गुरु बिन उर अँधियार रैन सम,
मिलत उगत जिमि भाना हो ॥१॥
सन्त स्वरूप ज्ञान की मूरति,
पर्शत तपन बुझाना हो ॥ २ ॥
बिन गुरु यम फन्दा नहिं छूटत,
कोटि कर्म करि आना हो ॥ ३ ॥
तीरथ बरत सकल गुरु शरणे,
जप तप यज्ञ महाना हो ॥ ४ ॥
राम कृष्ण हरिहर विधि नारद,
सब गुरु शरण लुभाना हो ॥ ५ ॥

गुरु मुख मन्त्र सुनत अघ नाशत,
निर्मल ज्ञान उगाना हो ॥ ६ ॥
बहुत जन्म कै पुण्य उदय भयो,
सद्गुरु शरण भेटाना हो ॥ ७ ॥
कह अभिलाष शरण गुरु गहि के,
जन्म मरण तरि जाना हो ॥ ८ ॥

१०. पद

मंगल मूल अमंगल हारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ।
सुख दातारी दुःख प्रहारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ॥टेक॥
सम्यक् जड़ चैतन्य परख विद
नित्य निरन्तर चिन्तत सद् चिद् ।
जगत वासना ग्रन्थि विदारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ॥ १ ॥
अनघ अकाम अमद अबिकारी,
अजर अमर पद पाय सुखारी ।
शोक मोह दुख द्वन्द्व निवारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ॥२॥
अनुभव ज्योति निकर रविकर सम,
जगमगात नहि रह अबोध तम ।
हिंसा झूठ उलूक छिपारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ॥३॥

समता क्षमा शील को धारे,
सब जीवन पर दया विचारे।
ममता क्रोध द्रोह कर छारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ॥४॥
विचरि विचरि जगजीव जगाधत,
भूल निवारि सुपन्थ लगावत।
निःस्वारथ अति पर उपकारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ॥५॥
उदासीन आसीन परम पद,
सब आचार विचार शुद्ध सद्।
पावन सन्त वेष व्रत धारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ॥६॥
तव पद पाय भयो बड़ भागी,
पद पाथोज पराग अनुरागी।
भ्रमर मग्न अभिलाष सदारी,
जय गुरु जय गुरु जय हे जय ॥७॥

११. पद

हे सद्गुरु हे सुख दातार।
नमो नमो पद बारम्बार ॥टेक॥
मैं मति मन्द अधम अति भारी।
विषय वासना विवश दुखारी।
पावन पतित करो अविकार।
नमो नमो पद ....॥१॥

यद्यपि स्वप्न रूप जग सारा।
तदापि न मोह तजत गृह दारा।
ममता हरि करिये भव पार।
नमो नमो पद ......॥२॥
नहिं तव भक्ति नहीं कछु ज्ञाना।
नहिं कछु साधन विरति अमाना।
सकल भाँति मैं अधम लचार।
नमो नमो पद ......॥३॥
तन मन वचन प्रबल भवधारा।
तेहि वश थिर न लहत निशिवारा।
दै निज शक्ति करो निरुवार।
नमो नमो पद ......॥४॥
जन्म मरण से लेहु बचाई।
विनय करों प्रभु होहु सहाई।
तुम बिन कौन हरे भव भार।
नमो नमो पद ......॥५॥
एकमात्र याही अभिलाष।
मिले मोक्ष छूटे दुख पासा।
दया करो जय जन हितकार।
नमो नमो पद ......॥६॥

१२. पद

दर्शन दे दो हे गुरुदेव।
हम सबके कर दो दुख छेव ॥टेक॥
काम क्रोध मद लोभ सताते,
मोह भंवर में डूबे जाते।

ज्ञान थान पे मुझे बिठा के,
पार करो भवसागर खेव ।। १ ।।
अगम अगाध मनोमय धारा,
अहंकार घड़ियाल करारा ।
मगर मच्छ ममता गृह दारा,
तिन से जान बचा मम लेव ।। २ ।।
काम वासना की अति आँधी,
अन्धकार आसक्ति अनादी ।
नहिं पतवार नहीं है माझी,
नाव पुरानी धार समेव ।। ३ ।।
विषय देह अध्यास नशा दो,
पाप वासना दूर भगादो ।
आवागमन के फन्द छुड़ा दो,
यह अभिलाष महान पुरेव ।। ४ ।।

१३. पद

हमें भी प्रभू जी ! अपना समझकर,
अपनी शरण में लगा लीजियेगा ।
बताये स्वतः पन्थ मुक्ती क मारग,
दया कर वहाँ तक डटा दीजियेगा ।।टेक।।
सुखासक्ति आवर्ण बहु, प्रारब्धी को संग ।
मन पदार्थ प्राणी मिलत, करत रहत नित भंग ।।
प्रबल दृष्टि पारख उगाकर हृदय में,
सुखाशा मनोमय जला दीजियेगा ।।१।।
यद्यपि जानत क्षणिक सब, विषय देह दुख मूल ।
पाँखी बनि झुलसत तदपि, पूर्व मनोमय शूल ।।

सो उपराम करके विषय देह मन से,
प्रबल दोष दृष्टी बना दीजियेगा ॥२॥
गाफिल आलस मन्द गति, सुख आशा अभिमान।
मोहिं पछारत रहत नित, मोक्ष पन्थ से मान॥
मगर नित्य अबसे बढ़ाऊँ कदम मैं,
यही ध्येय मेरा बना दीजियेगा ॥३॥
शिष शिष्या विद्या विभव, राज अटारी देह।
क्योंकर तिन से प्रेम कर दुखद पृथक क्षण खेह॥
क्षणिक भोग जग से हृदय तोड़ करके,
स्वतः प्रेम में मन बसा दीजियेगा ॥४॥
आज काल टारत रहत, बीत जात दिन शाम।
चूके अवसर मिलत नहिं, करु स्थिति के काम॥
हमें मुक्त होना इसी श्वास में है,
ये अभिलाष का मन बना दीजियेगा ॥५॥

१४. पद

जो हम हैं पतित तो हो पावन पतित तुम,
ये औसर प्रभू जी! भले ही मिला है॥ टेक॥
नख सिख से नाथ! मैं भरा पापों क खजाना,
हूँ दास आपका, मेरा है मात्र कहाना।
नहीं शक्ति साधन न वैराग्य मन में
नहीं भक्ति किञ्चित् हृदय में भला है ॥१॥
मेरे अनेकों भूल को प्रभुवर सुधारेंगे,
फिर फिर गिरूँगा भव में तो फिरफिर सम्हारेंगे।
कठिन रोग जन्मादि से अब बचा लो,
तेरे शीश पर नाथ! मेरी बला है ॥ २ ॥

पापी समझ के आप जो मुझको हटायेंगे,
तो इस मलीन दास को फिर को निभायेंगे।
अतः आप अपनी शरण में लगाएँ,
हृदय पाप तापों से मेरा जला है ॥ ३ ॥
जो पाप के समूह मैं पावन समूह तू,
भव नद में बहइया जो मैं भव से खेवैया तू।
यही एक अभिलाष आशा किये हैं,
दया देव "सूरत" स्वतः पद मिला है ॥ ४ ॥

१५. पद

प्रभू ! वश तेरी है इक आश।
बनालो चरण कमल का दास ।टेक।
जगत में सब स्वारथ के हीत,
मात पितु बन्धु सगा अरु मीत।
नारि सुत मोह जीव के फाँस;
बनालो चरण कमल का दास ॥१॥
शान्ति की आश फिरा चहुँ ओर,
कहीं न मिला ठिकाना ठौर।
भटकता फिरा जिमी आकाश,
बनालो चरण कमल का दास ॥२॥
योग जप तप तीरथ व्रत नेम;
नहीं है कहीं जीव को क्षेम।
शरण हे साधु गुरू सुखराश,
बनालो चरण कमल का दास ॥३॥

लगा दो नौका मेरी तीर,
मिटा दो जन्म मरण की पीर।
पुरा दो मेरा ये अभिलाष,
बनालो चरण कमल का दास ॥४॥

१६. पद

जय गुरु-सन्त ! मंगल मूल ॥ टेक ॥
काम क्रोध मदादि मन भव,
त्रिविधि ध्वंसक शूल ॥ १ ॥
अवनि तल स्वच्छन्द विचरत,
हरत जन मन भूल ॥ २ ॥
द्वन्द्व गत सुख कन्द सन्तत,
व्याधि विश्व विमूल ॥ ३ ॥
तरण तारण पाप हारण,
विगत शोक समूल ॥ ४ ॥
पिण्ड से ब्रह्माण्ड तन मन,
तुच्छ कीन्हें तूल ॥ ५ ॥
बार बार नमन्त तव,
अभिलाष पद को धूल ॥ ६ ॥

१७. पद

हरयो मम पीर दरश गुरु दइके ॥ टेक ॥
अमृत मय उपदेश सुनायो,
दुर्गुण दूरि करइके।
तृष्णा चाह को ताप मिटायो,
उर सन्तोष जुड़इके ॥ १ ॥

डूबत रह्यों मोह के सागर,
अहं तरंग समइके ।
गहि के बाँह उबारयो मोको,
जग दुख द्वन्द नशइके ॥ २ ॥
अपने बाद जगत यह चंचल,
नहिं कछु स्ववश रहइके ।
तेहिं अभिमान लख्यो अब मिथ्या,
परख में लक्ष्य करइके ।
अजर अमर अमृत पद पायो,
सब अभिलाष पुरइके ॥ ४ ॥

१८. पद

जय हे साधु सद्गुरु देव ॥ टेक ॥
जड़ चैतन्य को भेद देवत,
सब प्रखावत भेव ॥ १ ॥
देत शिक्षा सरस हितकर,
करत कलिमल छेद ॥ २ ॥
पतित पावन अधमुधारण,
नाहिं तुम सम केव ॥ ३ ॥
चहुँ दिशा में दिखत भक्षक,
एक रक्षक देव ॥ ४ ॥
सब प्रकार से नम्र ह्वै,
अभिलाष तव पद सेव ॥ ५ ॥

१६. पद

दुख हर आप सद्गुरु देव ॥ टेक ॥

सत्य शील विचार दाया, धीर धी धरि धेव।
सुख करन दारिद हरन, संसार कलिमल छेव ॥१॥
अति प्रबुध विद्या विशारद, हरि अविद्या लेव।
जड़-चैतन्य रु बन्ध-मुक्ती, सब प्रखाचन भेव ॥२॥
बन्दिछोर कृपालु मंगल मूल, शूल नशेव।
पर्शि पद त्रयताप नाशत, नित्द मोक्ष समेव ॥३॥
जीव को अति हीत, भवनिधि तरण नौका खेव।
नमत पद अभिलाष, तव तजि दूसरा नहिं देव ॥४॥

२०. पद

मन ! करु प्रेम गुरु पद कंज ॥ टेक ॥
दिव्य दृग हिय खुलत निर्मल, पद पराग सु अंज ॥१
नित्य निज को बोध होवत, अखिल कलिमल गंज ॥२
साधु रहस सुचार सम्यक्, लहत मानस मंज ॥३
सेइ शान्ति अनीक सद्‌गुण, खेद मन कृत खंज ॥४
मोक्ष पद अभिलाष अवगत, रहँट मर्णज भंज ॥५

२१. पद

गुरु बिन को करे भव पार ॥ टेक ॥
ब्रह्म विश्व स्वरूप, दूजे ईश शून्य अकार।
कीश नट इव नर नचावत, किमि सकै सो तार ॥१
विधि महेश सुरेश हरि, सनकादि सुर मुनि नार।
गुरु चरण के दास सब, चौबीसहूँ अवतार ॥२
यज्ञ जप तप योग साधन, तीर्थ बर्त हजार।
उर अविद्या ग्रन्थि को, किमि करि सकै निरुवार ॥३॥

सकल भ्रम मन पथ परीक्षक, जाल युग से न्यार।
श्री कबीर दयाल दिनकर, परख ज्ञान उजार।४
काल गाल कराल बाल, बेहाल लेहु उबार।
सकल आश विहाय, लघु अभिलाष शरण तुम्हार॥५

२२. पद

मन ! करु प्रेम शुचि सत्संग॥ टेक॥
जड़ चैतन्य कि भिन्न दृष्टी, पाइ बोध अभंग॥१॥
व्यसन दुर्गुण दुसह दारुण, दुःख दमन कुसंग॥२॥
प्रश्न उत्तर कथा निर्णय, विविध ज्ञान प्रसंग॥३॥
पशि भागत पाप संचित, बहत निर्मल गंग॥४॥
साधि साधन विरति बाढ़त, ध्वंस होत अनंग॥५॥
पाय पद अभिलाष आपन, लहत मोक्ष असंग॥६॥

२३. पद

मिले गुरु-सन्त मोह तम हारी॥ टेक॥
ममता मोह द्रोह मन कलिमल,
　　अघ अवगुण अंधियारी।
नशि अज्ञान रैन दिनकर इव,
　　दिव्य दृष्टि दुख टारी॥ १॥
मीन मांस के लौभ वशी ज्यों,
　　लखत न काल अनारी।
जलत पतंगी ज्योति मोह वश,
　　मृगा शब्द सुनि ख्वारी॥ २॥
त्यों ही विषय मोह वश पामर,
　　मैं अति दीन दुखारी।

दै निज बोध दे‌ह मद नाश्यो,
शोक मोह निरुवारी ॥ ३ ॥
ऐसो बुद्धि करो मम साहेब,
तव पद प्रेम सदारी ।
तजि अभिलाष भोग विषयन की,
मिलै मोक्ष अविकारी ॥ ४ ॥

२४. पद

मन ! गुरु पद में इमि करु यारी ॥ टेक ॥
रविमुख सुमन यथा रवि मुख रत,
मीन नीर जिमि प्यारी ॥ १ ॥
स्वाति बूंद पपिहा पतंग दंव,
चातक इन्दु यथारी ॥ २ ॥
मधुप सरज मृग मधुर मधुर रव,
कामिहिं प्रिय जिमि नारी ॥ ३ ॥
लोभी धन मोही सुत सन जिमि,
मित्र मित्र बलिहारी ॥ ४ ॥
अति अभिलाष मुदित निज पद में,
मणि-फणि लक्ष्य सदारी ॥ ५॥

२५. पद

यदी छूटना है तुझे दुःख भव से,
तो गुरु की शरण को भलीभाँति गह ले ॥टेक॥
रहा तू जगत् में भुलाये भुलाये,
मगर चेत कर अब गुरू पद में रह ले ॥ १ ॥

चले अब गुरू मग शरम लाज तजकर,
कोई कुछ कहे तो तु मन मार सह् ले ॥ २ ॥
जगत् छोड़ना है मरे बाद इक दिन,
अतः तू प्रथम त्याग कर शान्ति गह ले ॥ ३ ॥
बिताना है जीवन किसी भाँति से ही,
तो गुरु ऐन में चैन अभिलाष कर ले ॥ ४ ॥

२६. पद्

जय सन्त सद्गुरुवर अज्ञान तम हटाये,
सद्ज्ञान दान देकर परमार्थ पथ सुझाये ॥ टेक ॥
गुरु सन्त से विमुख हो बहुतेक प्राणी जग के,
तिन बंचकों के भ्रम से गुरु धन्य सो छुड़ाये॥१॥
गुरु सन्त ही जगत में तारण तरण उजागर,
गुरु साधु भक्ति के बिन पशुवत् जन्म बिताये ॥२
अज्ञान राग छेदन भक्ती प्रकाश मारग,
निज रूप वोध देकर विक्षेप सब दुराये ॥३॥
इस दास के हृदय की शंका सकल मिटाकर,
गुरुदेव धन्य बोधक पद कमल में लगाये ॥४॥

२७. पद्

श्री सद्गुरु के पद कमल में,
दास का नित प्रेम हो।
सत्संग कथा साधन सुसंयम,
आदि में दृढ़ नेम हो ॥ टेक ॥
हिंसा कपट व्यभिचार,
कामादिक मनोमय सैन्य जो।

गुरु ज्ञान सर से भेद कर,
गुरु भक्ति में नित क्षेम हो ॥१॥
जग से विमुखता हो भले,
अन्तरमुखी हम नित बनें।
जग के विभव को त्याग कर,
गुरु ज्ञान धन का लेन हो ॥२॥
अज्ञान वश भटकूँ फिरूँ,
जग को मैं अपना मानकर।
निज पद की समता हो हमें,
औरो न कोई ध्येन हो ॥३॥
अभिलाष अब फिर से नहीं,
चंचल सुखों में भाव हो।
स्थीर निज पद में रहूँ,
बस शांति शय्या सेन हो ॥४॥

२८. पद्

बैराग्य रवि उगा दो, हे दीनबन्धु स्वामी।
जग राग तम हटादो, हे दीनबन्धु स्वामी ॥ टेक ॥
अज्ञान की अँधेरी, छाई है चारों दिश में।
मग सूझता न मेरा, हे दीनबन्धु स्वामी ॥ १ ॥
कामादि क्रोध डाकू, निज मार्ग को हैं घेरे।
सद्ज्ञान शस्त्र देकर, मुझको बचालो स्वामी ॥ २ ॥
सुख चाहना के काँटे, पग पग में चुभ रहे हैं।
रोते विलखते जाते, हे दीनबन्धु स्वामी ॥ ३ ॥
तिस पर भी मूढ़ता वश, सुख आश में पड़ा मैं।
आसक्ति ये रुलाती, हे दीनबन्धु स्वामी ॥ ४ ॥

मैं धीर वीर होऊँ, सुख भास आश खोऊँ।
सुख आश पड़ि न रोऊँ, हे दीनबन्धु स्वामी ॥ ५ ॥
दुख दोष दृष्टि आवे, सुख भावना परावे।
वैराग्य वीर भावे, हे दीनबन्धु स्वामी ॥ ६ ॥
कब शान्ति पद को पाऊँ, मन शत्रु को नशाऊँ।
दिन रैन दिल में खटके, हे दीनबन्धु स्वामी ॥ ७ ॥
वैराग्य स्वच्छ जीवन, मन मार के रहीवन।
अभिलाष ये पुरा दो, हे दीनबन्धु स्वामी ॥ ८ ॥

२६. पद

बसेगी भक्ति कब गुरु की,
स्वरूपक ज्ञान दिल अन्दर।
तजेंगे मान विद्या धन,
गहें निर्मानिता सुन्दर ॥टेक॥
न मन में क्रोध लायेंगे,
अहं दिल से निकालेंगे।
न कोई मित्र अरि होगा,
न ईर्षा डाह की गन्दर ॥१॥
गुरू वो साधु सेवा में,
न आलस होयगी रंचक।
लोभ वो मोह को तज के,
कपट छल छोड़ि उर सुन्दर ॥२॥
गुरु की भक्ति में अपना हि,
जीवन धन्य समझेंगे।
सदा सद्ग्रन्थ सत्संगत,
कथा में प्रेम उर सुन्दर ॥३॥

कभी भी भूलकर तन को,
न अपना रूप समझेंगे।
मैं चेतन सर्व से न्यारा,
दुखद तन दृश्य मन बन्दर ॥४॥
सदा सद्गुण भरे होंगे,
व क्षमता नम्रता समता।
अहो ! कब पूर होयेगी,
ये अभिलाषा मेरी सुन्दर ॥५॥

३०. पद

यदी गुरु की दया होती, तो मम उद्धार हो जाता।
जगत की मोह ममताओं, से छुटकर पार हो जाता ॥
अनादी से मैं भटका हूँ, रहँट चक्रों में लटका हूँ।
ये आवागमन के झगड़े, से मम उपकार हो जाता ॥
अनेकों जन्म की कलियाँ. जो सूखी हैं निजातम की।
वारि उपदेश से गुरु के, चमन गुलजार हो जाता ॥
विषय के पंक में धंसकर, जगत के मोह में फँसकर।
मैं निज पद भूल बैठा हूँ, मनुज तन सार हो जाता।
ये भवनिधि का झकोरा है, दीन अभिलाष टेरा है।
करो गुरुवर दया दृष्टी, तो बेड़ा पार हो जाता ॥

३१. पद

धधकती हुई इस मानोमय जहाँ में,
गुरु ही हमारा सहारा रहा है ॥ टेक ॥
माता पिता सुत दार मित्र बन्धु जो घने,
सब लोग अपने स्वार्थ से हितकर मेरे बने।

जग दुःख से बचा ले इतनी किसमें शक्ति थी,
सबही बने गुलाम कामना आसक्ति की।
मिले सन्त पथ में तो देखा नजर से,
वही एक सद्गुरु पियारा रहा है॥१॥
चारों तरफ अग्नी बढ़ी घट घट शरीर में,
विद्वान अविद्वान रंक वो अमीर में।
सुख शांति नहीं बाम बिरह धन जगीर में,
इक शांति सरोवर विशाल मत फकीर में।
बता मन्त्र ऐसा लगाये शरण में,
हुआ मैं गुरू का हमारा रहा है॥२॥
कोई न किसी का सभी मन सुख के यार हैं,
जब काम अपना हो गया करते किनार हैं।
किसकी तरफ उंगली उठाके कह दूँ हमारा,
क्षण में विनाश हैं सभी मन काल के चारा।
मगर हाँ! ये कह सकता मैं एक स्वर से;
गुरू सन्त मेरा अधारा रहा है॥३॥
गुरुवर हमारे ध्येय में शक्ती विराग दो,
फिर से न मुख दिखाऊँ इस जलती जहान को।
निज स्थिती के हेतु सहन धीर वीर हूँ,
इस दुःख रूप भोग का अब से न स्वाद लूँ।
यही एक अभिलाष तन जाल छूटे,
दया देव सद्गुरु तुम्हारा रहा है॥४॥

३२.पद

दयानिधि जी दया कीजै,

मुबारक दिन ये मेरा हो।
दया करना है गुण तेरा,
इसी से दृष्टि फेरा हो ।।टेक।।
अहो ! क्या चाँदनी झलकी,
निरिच्छा शान्ति ममता की।
हुई शीतल बुझी इच्छा,
न कोई भोग केरा हो ।।१।।
प्रबल दुख दोष दृष्टी में,
रहे वृत्ती सदा मेरी।
हो सोते ऊंघते जागृत,
वो रजनी दिन सबेरा हो ।।२।।
दुखन तन मन की स्मरणा,
हो पग पग वेग धारा से।
न गो मन रस कभी लेवें,
अटल ये ध्येय मेरा हो ।।३।।
यथा कामी कुमारग में,
रखे साहस अपरिमित है।
वही भी पाठ साहस का,
स्ववश मन पर घनेरा हो ।।४।।
भला ! कैसा सुहावन दिन,
गुरूबल प्राप्त हम सबको।
न कारज शेष अब रक्खें,
प्रभू ये दृष्टि तेरा हो ।।५।।
तेरा उपकार उस दिन का,
न भूलूँ मैं गुरू स्वामी।

प्रबल दुख दर्द से काढ़े,
स्व पारख शब्द टेरा हो ॥६॥
मिटाये गर्ज सब जग की,
जिलाये बोध अमृत दे।
पिलाये तोष का प्याला,
जिसे नहिं दुःख फेरा हो ॥७॥
रहे अभिलाष गुण गाता,
सदा मन फेर जग सुख से।
मुबारक हो मुबारक हो;
मुबारक दिन ये मेरा हो ॥८॥

३३. पद

दिये निज ज्ञान गुरु स्वामी,
उसे मन! नित्य गाता जा।
भक्ति सद्ज्ञान निज पद में,
सदा तू लव लगाता जा ॥ टेक॥
रहा जलता जगत मग में,
उबलता काम की अग्नी।
दिये सन्तोष सुख शान्ती,
उसे तू नित्य ध्याता जा ॥१॥
सदा आगे कदम रक्खो,
न पीछे पाँव फिर टारो।
बोध वैराग्य स्थिति में,
लगन नित नव बढ़ाता जा ॥२॥
बहिरमुख वृत्ति दुखकारी

तिसे तू त्याग थिर होवे।
हृदय की त्यागि आसक्ती,
परख पद में समाता जा ॥३॥
न कोई और दिन आये,
मुक्त तू आज ही हो ले।
स्वतः अभिलाष थिर होकर,
विषय से दिल हटाता जा ॥४॥

३४. पद

तुम सर्वोत्तम निज स्थिति के दातारा।
गाऊँ मैं सुयश तुम्हारा ॥टेक॥
कितने भूले अरु भटके थे,
कामादिक विष में लटके थे।
विष को ही अमृत मान, स्वतः पद हारा।गाऊँ०।१।
मैं लथ पथ पड़ा जगत भव में,
गुरुदेव कृपा करि इक पल में।
प्रभु कर्णधार हो करके पार उतारा ॥ गाऊँ० ॥२॥
प्रभु मन के चाल लखा करके,
निज पद का भेद बता करके।
अन्तरबृत्ती करने का दिया इशारा ॥ गाऊँ० ॥३॥
किस मुख से मैं गुण तव गाऊँ,
गाऊं तो नहीं मैं कह पाऊं।
है अल्प बुद्धि मति थोर आप गुण भारा।गाऊं०॥४।
जय जय गुरु बोधक देव गुरू,
हो धन्य धन्य हो धन्य प्रभू।
मुझ ऐसे पापी को भी लिया उबाराऊं ॥गा०॥५॥

जो ऐसे गुरु पद भूलै,
सो चौरासी झूला झूलै।
ऐसे सद्गुरु को भूलिके किमि निस्तारा ॥गाऊँ०।६॥
तुम पतितों के उद्धारक हो,
तुम भक्त जनों के तारक हो।
तुम एकमात्र अभिलाष के अहो सहारा ॥गाऊँ०॥७॥

३५. पद

जय जय सद्गुरु कब्बीर स्वज्ञान प्रदाता।
जय बीजक बोध विधाता ॥ टेक॥
सद्ज्ञान जगत में लोप रहा,
मिथ्या पाखण्डारोप रहा।
अज्ञान अन्धमें उदित स्वज्ञान प्रभाता ॥जयबी०॥१॥
अमृत वर्षा वर्षाय दिये,
अविनाशी जीव जगाय दिये।
आपी उद्धारक बन्धु जगत में ताता ॥जय बी०॥२॥
तुमही पितु मातु हमारे हो,
खानी बानी दुख टारे हो।
तुमही घातक संसार से तोड़े नाता ॥जय बी०॥३॥
निर्भय निर्मल अविनाशी हो,
स्थिर पारखपद वासी हो।
जीवनभर तव अभिलाष रहे गुण गाता ॥जयबी० ।४

३६. पद

हम सब गुरु प्रेमी भक्तजनों मिलि जाओ।
गुरु-विजय ध्वजा फहराओ ॥ टेक॥

भरामक गुरुवों के फाँसों को,
देवी देवादिक गांसों को।
ब मनके भ्रमको दलसे दूरि बहाओ ॥गुरुवि० ॥१॥
गाली निन्दा से मुख मोड़ो,
हिंसा व्यभिचार से मन तोड़ो।
ारेअवगुणको त्यागि सुबुधि अपनाओ॥गुरुवि० ॥२॥
हम सब भक्तों में प्रेम रहे,
गुरु भक्ती में दृढ़ नेम रहे।
र्शन पर्शन सद्गुरु सन्तों के जाओ ॥गुरु वि० ॥३॥
प्रेमी भक्तों जिज्ञासु जनों,
सद्गुण साहस युत बीर बनो।
मानव तन उद्धार करन चितलाओ ॥गुरुवि०॥४॥
गुरु बोधक परख विहारी हो,
अज्ञान मोह भ्रम हारी हो।
म दीनहीन दुखियों को शरण लगाओ ॥गुरुवि०॥५॥

३७. पद

ना लो चरण रज शरण में पड़ा हूँ,
थे संसार सागर से मुझको बचा कर ॥ टेक ॥
ारि पुत्र गृह कुटुम धन, देह भोग सुख साँच।
नि मानि ममता विवश, मर्कट इव नित नाँच ॥
घनघोर छाई अविद्या निशा उर,
उगा ज्ञान तम को नशा दो दिवाकर ॥ १ ॥
ोद्र भोग हित अति चतुर, परमारथ नहिं ध्यान।
त्य अहिंसा भक्ति नहिं, पर उपकार न दान ॥

पशू तुल्य जीवन अनोखा बिताये,
गहे हाथ कंकड़ सु हीरा गवाँकर ॥ २ ॥
काह जगत् मैं काह हौं, काह मेरो कर्तव्य
नहिं जान्यों सत्संग करि, मन माया मन्तव्य।
बड़ी भूल कीन्हें न चीन्हें प्रभू को,
अहो नाथ ! अपराध मेरे क्षमा कर ॥ ३ ॥
बार बार बिनती करौं, धारि चरण में माथ
सत मारग की सूझ दे, कीजै नाथ ! सनाथ।
यही एक अभिलाष मेरा पुरा दो,
दुखी जान करके शरण में लगाकर ॥ ४ ॥

३८. पद

प्रभु ! मम चित में मैं बस जाऊँ ॥ टेक
तन धन धाम धरणि धरणी सुख,
पंच विषय बिसराऊँ । १
अज अविकार अचल अमृत पद,
तेहि स्थिति ठहराऊँ ॥ २
जग त्रयकाल जगत मों-में नहि,
तस सब भास ढुराऊँ ॥ ३
दृढ़ अभिलाष प्रेम अपने में,
समुझि समुझि सुख पाऊँ ॥ ४

३९. पद

भवसे तारक तुम्हीं, जन उधारक तुम्हीं, सन्त प्यारे
सद्गुरु दीन बन्धू हमारे ॥ टेक

आप बिन है न कोई सहारा,
जग में देखा वो समझा विचारा।
मित्र सुत दार हैं स्वार्थ के यार हैं, भव के धारे।
नित्य डुबते डुबाते हैं सारे।भव०॥१॥

काम क्रोधादि से मैं ग्रसा हूँ,
भोग के मोह में मैं फंसा हूँ।
इससे लाचार हूँ, डूबता धार हूँ, कर किनारे।
अपने चरणों का दीजे सहारे॥भव०॥२

हैं सहायक जगत के जो मेरे,
दूर करते हैं चरणों से तेरे।
ज्ञान के सिन्धु तू, दीन के बन्धु तू, दुःख हारे।
भक्षकों से हमें ले उबारे॥ भव०।३।

ज्ञान वैराग्य से हीन हूँ मैं,
चाह अज्ञान से दीन हूँ मैं।
शक्ति दो, भक्ति दो, पद में अनुरक्ति दो, निजउधारे।
मोक्ष अभिलाष हो प्राण प्यारे।भव॥४॥

४०. पद

हमारी लगन स्थिती में सदा हो,
यही दृष्टि दाया प्रभू कीजियेगा।टेक॥
सभी छोड़ना आज वो काल में है,
प्रथम से निराशा करा दीजियेगा॥१॥
हमारा समय गाफिली में न जावे,
सजग वीरताई करा दीजियेगा॥२॥

नहीं आपको मान सुख हेतु भूलूँ,
शरण भक्ति में मन लगा दीजियेगा॥३

कथन से रहन नित्य ही श्रेष्ठ होवे,
मेरा ध्येय आगे सदा कीजियेगा॥४

जगत के दुखों को कभी भी न भूलूँ,
अहं देह मन का मिटा दीजियेगा॥५

स्वयं शान्ति का ना कभी ध्यान जावे,
स्वतः रूप में मन बसा दीजियेगा॥६

यही एक अभिलाष है और बाकी,
अमर आप हूँ बस अमर कीजियेगा॥७

द्वितीय उपदेश तथा चेतावनी खंड

४१. पद

दो दिन की फुलवारी जीवन,
मन भँवरा मत भूल ।. टेक ।।
चटक चाँदनी छटा जवानी, बाढ़ क पानी रे ।
सुत नारी धन मान बड़ाई, सेमर को हैं फूल । १।।
यह जीवन का कौन भरोसा, श्वास न आये रे ।
कुटुम्ब कबीला ले मशान में, जारि करेंगे धूल ।।२।।
बीते समय हाथ पछिताना, तेरे आये रे ।
अवसर मिला शीघ्र तू करले, भजन भक्ति सुखमूल ।।३।।
यह शरीर-संसार सपन-सा, छिन इक मेला रे ।
तू अभिलाष विलास विषय तजि, निज स्वरूपमें तूल

४२. पद

मन में सम्हल के देखो,
दो दिन की जिन्दगी है ।
यह ओस का बबूला,
तन ठहरतां नहीं है ।। टेक ।।
क्षण-क्षण में बदलता थे,
क्षण ही में लुप्त होता ।
मिट्टी के कच्चे घट में,
जल ठहरता कहीं है ? ।। १ ।।

वायू के झोंक में ज्यों;
दीपक की ज्योति नाजुक।
त्यों जिन्दगी तुम्हारी,
नापायेदार की है ॥२॥
संसार धर्मशाला,
सब जीव मुसाफिर ज्यों।
आते ही जाते रहते,
कोई ठहरता नहीं है ॥३॥
धन दार गृह कुटुम्बी,
नहिं साथ में चलेंगे।
अच्छी बुरी कमाई,
साथी तेरा वही है ॥४॥
दो दिन की जिन्दगी में,
मत दाग तू लगाना।
चलना सम्हल सम्हल के,
माया नगर यही है ॥५॥
तू चेत ऐ भटकता,
परदेश का मुसाफिर।
अभिलाष देश तेरा,
संसार यह नहीं है ॥६॥

४३. पद

मत मान करो मत शान करो,
ये जीवन दो दिन की माया।

मत यौवन का अभिमान करो,
जल-बुन्द ढले तेरी काया ॥ टेक ॥
यह जीवन है सपन जैसा,
यह जीवना पानी का फेना।
यह जीवन है कण आस क्षणिक,
यह जीवनाजाम तरु की छाया ॥१॥
घर पुत्र कुटुम सुख सम्पत्ती,
जो मान रहे अपना अपना।
ये भी सपना कर गार जरा,
क्या ले जाये क्या है लाया ॥२॥
यह चाँद उगा है उजियाली,
अंधियारी आये दो दिन में,
यह नीति अनादी इस जग की,
वह जावेगा जो है आया ॥३॥
संसार है स्वारथ का साथी,
दुख आन पड़े नहि कोई है।
किसकी ममता में तू भूला,
फूला फूला फिरता धाया ॥४॥
निःसार विनाशी कष्ट भरे,
इस जग में है इक सार भजन।
अभिलाष तजो अभिमान सभी,
कर लो जो करने है आया ॥५॥

४४. पद

जागो जागो गुरु पद लागो,
जगत मनोमय खेला है।

करना हो सो जल्दी कर लो,
दो दिन जीवन मेला है ॥टेक॥
झूठी दुनिया झूठी दौलत,
झूठा जगत झमेला है ।
मित्र सगे दारा सब झूठे,
जाता हंस अकेला है ॥१॥
रूप जवानी विद्या बानी,
सार रहित जिमि केला है ।
क्यों तू भला मोह निशा में,
फिरता ठेला ठेला है ॥२॥
बाल गया ज्वानी अब आयी,
वृद्ध काल अलबेला है ।
तू भूले दुनियादारी में,
किन्हें संग दुहेला है ॥३॥
अवसर बीते पछताओगे,
जागो जीव जगेला है ।
तू अभिलाष स्वतः पद थिर हो,
अन्त समय का बेला है ॥४॥

४५. पद

यह संसार सराय मुसाफिर,
दो दिन रहने आया है ।
गृह सम्पत्ति में तू मत भूले,
ये सपना की माया है ॥टेक॥
को है तेरा तू है किसका,

क्या लेकर के आया है।
मरते दम फिर क्या ले जावे,
जब छूटे यह काया है ॥१॥
बहुत बचा कर पग तू रखना,
मग में काँट बिछाया है।
मोह न करना बैर न करना,
पंथी जानि अमाया है ॥२॥
भूखे को तू भोजन देना,
प्यासे नीर पिलाया है।
दुखियों पर तू करुणा करना,
पर उपकार कमाया है ॥३॥
यह नर देह मोक्ष की भूमी,
बड़ी भाग्य तू पाया है।
आवागमन को फेर मिटाले,
सफल बनाले काया है ॥४॥
आज काल्ह में सब दिन बीते,
आया काल नियराया है।
अबकी चूके फिर रह जावे,
क्यों अभिलाष भुलाया है ॥५॥

४६. पद

सभी को मौत है इक दिन,
न कोई रहने आया है।
जगत यह धर्मशाला है,
मुसाफिर क्यों भुलाया है ॥टेक॥

न कोई पुत्र है तेरा,
　　न दारा बन्धु पति पुत्री।
सभी परदेश के पन्थी,
　　तू नाहक मोह जाया है ॥१॥
कर्म के वश अनेकों तन,
　　ये घर-घर छोड़ता चेतन।
न कोई साथ में जाता,
　　अकेले जग भ्रमाया है ॥२॥
सभी हैं स्वार्थ के साथी,
　　कुटुम्बी मित्र सम्बन्धी।
करे तू धर्म सत्संगत,
　　ये पाकर मनुज काया है ॥३॥
जगत है स्वप्न की रचना,
　　न इसको हर्ष चिन्ता कर।
करे निज रूप का चिन्तन,
　　तजे अभिलाष माया है ॥४॥

४७. पद

अतः विष भोग को त्यागो,
　　न फिर तुम दीन होओगे।
परम पद स्थिती पाकर,
　　सदा सुख नींद सोओगे ॥टेक॥
न फिर इच्छा सतायेगी,
　　न कोई कर सके मुजरिम।
अभय दुख से रहित सुखिया,
　　सबन शिरमौर होओगे ॥१॥

न होवे गर्भ में जाना,
न तापों में जलोगे फिर।
जो तजि आसक्ति विषयों की,
न फिर तन-बीज बोओगे ॥२॥
तेरी हो पूर अभिलाषा,
जो बाकी है बहुत दिन की।
परम पद मुक्ति को पाकर,
सकल दुख द्वन्द्व खोओगे ॥३॥
चमक जावे तुम्हारा दिनं,
उजाला ज्ञान का होवे।
निराला हो यदी गुरु के,
चरण अभिलाष सेवोगे ॥४॥

४८. पद

विषय हन्ता व तंन हन्ता,
यही बन्धन करारी है।
इसे ही त्याग दो दिल से,
न फिर बन्धन तुम्हारी है ॥टेक॥
अनादी से भटकता तू,
इसी विषयों के उपवन में।
कहीं सुख शान्ति न पाया,
प्रबल तृष्णा हहारी है ॥१॥
कहीं राजा हुआ दुखिया,
कहीं विद्वान प्रोफेसर।
क्षणिक तन छूटता जाता,
विषय वश फिर बनारी है ॥२॥

मनुष तन मोक्ष की भूमी,
भला! पाकर बिगारो क्यों।
विषय नर तन क फल नाहीं,
ये नर तन मोक्षकारी है॥३॥
करो अभिलाष गुरु पद में,
सुखाशा बन्ध उर तोड़ो।
प्रबल पारख व दुख दृष्टी,
यही अभ्यास जारी है॥४॥

४६. पद

अँखिया खोलो सद्गुरु बोलो,
भोर भये किमि सोते हो।
मोक्ष भूमिका नर तन पाकर,
क्यों गफलत में खोते हो॥टेक॥
तीन खानि से बाहर आया,
सुन्दर नर देही को पाया।
कंचन कामिनि देखि भुलाया,
भक्ति बीज नहि बोते हो॥१॥
खेल कूद बालकपन खोया,
यौवन काम छछन्द बिगोया।
वृद्ध भयो तृष्णा उर बाढ़ी,
भार धरे शिर ढोते हो॥२॥
चमड़ी काया देखि लुभाया,
मद मस्ती में समय गँवाया।
काल बली का फेरा आया,
अब क्यों बैठे रोते हो॥३॥

तीन मिनट टेशन पर गाड़ी,
अभी छूटती चेत खिलाड़ी।
सौदा करले सत्संग में,
क्यों तू अहमक होते हो ॥४॥

चेतो उठो क्षणिक जिनगानी,
किसमें भूला रे अभिमानी।
हो अभिलाष गुरू पद ध्यानी,
क्यों विषयन में गोते हो ॥५॥

५०. पद

कब निज में स्थित होऊंगा,
दृढ़ भाव यही निशि वार रहे।
मद काम राग अरि भेदन को,
बैराग्य युक्त तैयार रहे ॥टेक॥
मन की जो सूक्ष्म फुरनायें,
लखते लखते ही गति पायें।
को साधक है को बाधक है,
मन में ये सदा विचार रहे ॥१॥
जिन भावों से वैराग्य लिया,
वह भाव सदा सम्मुख होवे।
जो पंच विषय मन भावन है,
उन जड़ सृष्टी से पार रहे ॥२॥
भोगों में दोष दृष्टि होवे,
खाते पीते उठते चलते।

एकरस वीरत्व भाव रक्खें,
हर दम मन पर असवार रहे ॥३॥
चाहे सूरज में तम छाये,
चाहे पृथ्वी डगमग होवे।
पर मैं न हटूँ निज सद् पद से,
चौकस बरजोर सम्हार रहे ॥४॥
जब तक प्रारब्धी तन डोले,
तब तक पारख पद में बोले।
कब त्रय जालों से छूटूँगा,
हर वक्त यही गुजार रहे ॥५॥
नित सद्ग्रन्थों का पढ़ना हो,
नित पारख पद का मनना हो।
वृत्ती नहिं बाहर जाय कहीं,
अन्तर होकर निरधार रहे ॥६॥
मानस सृष्टी पर कब्जा हो,
अरु दिग्विजयी हम बन जावें।
गुरु बोधक देव ये वर दीजे,
मेरी गति मन के पार रहे ॥७॥
मेरा अन्तिम अभिलाष यही,
और कोई ध्येय है खास नहीं।
मैं निज का निज में रह जाऊं,
पारख में एकाकार रहे ॥८॥

५१. पद

मन ! मानो बचनियाँ हमार,
रहन जग दो दिनका ॥टेक॥

काह करोगे महल अटारी,
सुख सम्पत्ति परिवार।
रूप जवानी विद्या बानी,
देहियों तो होइ जइहैं छार ॥१॥
मुट्ठी बाँधि जगत में आये,
जइहौ हाथ पसार।
ना कुछ लायो ना लैजइहो,
झूठा सकल हंकार ॥२॥
जो कुछ सुनो गुनो अरु देखो,
स्वप्न समान असार।
छल स्वारथ से भरो जगत यह,
तजु ममता सुत दार ॥३॥
उत्तम देह मनुज को पायो,
मुक्त होन को द्वार।
करो भजन शम दम साधन उर,
धरो विवेक विचार ॥४॥
सब कामना जगत की त्यागो,
तजु तन का हंकार।
हर क्षण मुक्ति देश का चिन्तन,
अचल असंग अभार ॥५॥
मन की आश कबहुँ नहिं पूरे,
बीते कल्प हजार।
सब तजि मुक्ति पन्थ में लागो,
यहि अभिलाष है सार ॥६॥

५२. पद

मत अभिमान करो तन धन का,
क्षण ही में सब खोई रे।
जेहि हंकार भ्रमित मति तुम्हरी,
संग न जइहैं कोई रे ॥टेक॥
रूप जवानी विद्या बानी,
जाति पाँति कुल जोई रे।
जामें ऐंठा-ऐंठा घूमे,
पल में नाशे सोई रे ॥१॥
मात पिता कुल कुटुम सहोदर,
नारि पूत मित होई रे।
आज तुम्हें मालुम सब हमरे,
अन्त न कोइक कोई रे ॥२॥
खेलत खात हँसत दिन बीतत,
हाथ भजन से धोई रे।
मोह की पट्टी आँख में बाँधी,
सूझत नाहीं तोई रे ॥३॥
साधु संग में भूलि न बैठ्यो,
गृह कारज दिन खोई रे।
यही पाप चौरासी कीरा,
भयो रैन दिन रोई रे ॥४॥
सब मरि जायं पे हम नहिंमरिबे,
यह अभिमान भरोई रे।

पल में परलय काल करेगा,
यह नहिं जानत लोई रे ॥५॥
स्वप्न समान भोग तन मन धन,
राज रियासत ढोई रे।
झूठ मूठ में उमर बितायो,
भक्ति बीज नहिं बोई रे ॥६॥
कह 'अभिलाष' जागु रे मानुष,
सन्त जगावत तोई रे।
तजि अभिमान भजन में लागो,
जो निज साथी होई रे ॥७॥

५३. पद

दो दिन है इस घर में रहना,
आखिर जाना जरूरी रे।
किसहित मैं धन जन को जोड़ूँ,
झूठा राज जगीरी रे ॥टेक॥
हाड़ की ठठरी मांस क छाजन,
ऊपर चाम मढ़ौरी रे।
दुःख का कोट नरक तन मैला,
जिसका करे गरूरी रे ॥१॥
घर धन बाज वाक्य चतुराई,
ओहदा शान अमीरी रे।
पानी बीच बतासा जैसे,
स्वप्न खुशी दिलगीरी रे ॥२॥
सुत दारा औ सारा सरहज,

नौकर दास हजूरी रे।
अन्त समय कोइ काम न अइहैं,
मिथ्या भास भईरी रे ॥३॥
गर्भवास में अति दुख पायो,
ताको भूल गईरी रे।
नर तन पाय भजन कर बन्दे,
कोई नहि साथ भईरी रे ॥४॥
आज काल में तन छूटेगा,
किस पर फूल फुलेरी रे।
कह अभिलाष आश तजि जगकी,
सच्चा काम फकीरी रे ॥५॥

५४. पद

थोरी जिनगानी तुम भूल न जाना,
यह तन धन का कौन ठिकाना ॥टेक॥
तेरी जवानी बाढ़ क पानी,
सुन्दर काया होगी पुरानी।
दो दिन में बूढ़ापन आये,
नैन दिखे नहि कान सुनाये॥
निर्बल काया होंगे बेगाना ॥ यह तन० ॥ १ ॥
मात-पिता भगनी अरु भाई,
सुत नारी से तेरी होगी बिदाई।
तू किसका है कौन तुम्हारा,
किसके बल गुरु भक्ति बिसारा।
यह दुनिया है मुसाफिर खाना ॥ यह तन० ॥२॥

रात दिवस माया हित धाया,
कौड़ी-कौड़ी जोड़ि बढ़ाया ।
दान किया न धर्म कमाया,
मद माया में उमर बिताया ।
आँख लगे सब होंगे बिराना ॥ यह तन० ॥३॥
घर सम्पत्ति सुख साज सवारे,
इक दिन उठि चले हाथ पसारे ।
सब अभिलाष आश जो तेरे,
रह गये मन के मन में अधेरे ।
छूटे तन अरु माल खजाना ॥ यह तन० ॥ ४ ॥
तज के ममता मद अरु माया,
कर सत्संगत अवसर पाया ।
गुरु भक्ती सन्तन सेवकाई,
करके ले-ले शुभ गति भाई ॥
यह तेरे हित हेतु सिखाना ॥ यह तन० ॥ ५ ॥

५५. पद

मान हमारी कहना मनुवा,
मान हमारी कहना रे ॥ टेक ॥
यह संसार सराय पथिक तू,
बहुत अल्प दिन रहना रे ।
इनकी ममता क्या तू करता,
इनसे क्या है लहना रे ॥१॥
रेल की छाया हाट को मेला
ज्यों पानी को बहना रे ।

तैसे धन जन जीवन तेरा,
रहे न स्थिर रहना रे ॥२॥
ले ले जनम अनन्तों युग से,
पड़ा विविध दुख सहना रे।
अवसर आज मोक्ष साधन कर,
यही जनम नर गहना रे ॥३॥
जो चूकेगा पछितायेगा,
फेरि दुखों में दहना रे।
तजि माया अभिलाष भजन कर,
एक दिवस है मरना रे ॥४॥

५६. पद

ये जिन्दगी तुम्हारी, दो दिन की चाँदनी है।
मत भूल ऐ मुसाफिर, करले भजन तू अपना ॥टेक॥
ये धन कुटुम क मेला, ये रस भरी जवानी।
इसमें न फूल प्यारे, ये रैन के हैं सपना ॥१॥
मन के भुलावे में तू, आकाश नापता है।
नहिं आदि अन्त मन का, झूठी तेरी कल्पना ॥२॥
जो आज दिन है तेरा, वह कल नहीं रहेगा।
हो सावधान प्यारे, नहिं तो दुखों में तपना ॥३॥
अभिलाष होश में आ, बीता समय न आवे।
कर शीघ्र मोक्ष-साधन, निज रूप जाप जपना ॥४॥

५७. पद

छुटि जाई जगत कुदेशवा,
रहब हम अपने सुदेशवा ॥टेक॥

तन मन जगत पवन जल धरणी,
जहँ नहिं रैन दिनेशवा ॥१॥
मिलन वियोग रोग भय चिन्ता,
हर्ष शोक नहिं लेशवा ॥२॥
भूख प्यास सुख दुख न अवस्था,
अमर असंग अशेषवा ॥३॥
सब अभिलाष पूर जेहि पाये,
नहिं कछु करन को शेषवा ॥४॥
गत दुख द्वन्द्व विदेह परम पद,
अचल अचिन्त हमेशवा ॥५॥

५८. पद

नके मन से विषयों के प्रेम दूर हो गये,
अपने अविनाशी पद को पाके पूर हो गये ॥टेक॥
सके लिये संसार परेशान है सदा,
वे भोग जगत के उन्हें सब धूर हो गये ॥ १ ॥
ब जीव को मन शत्रु है क्षण-क्षण में नचाता,
उस मन शत्रु को जीत के वे शूर हो गये ॥ २ ॥
य ताप से पूरण शरीर जीवन दुख मयी,
हो मुक्त उसके ध्यास से सुख मूर हो गये ॥ ३ ॥
नका ही जीवन धन्य है नर देह को पाकर,
जिनके जनम मरण कलेश दूर हो गये ॥४॥

५९. पद

जीवन जगाओ मोह हटाओ,
बन्धन छुड़ाओ चेतन का ।

और न कोई काज तिहारो,
जो सोचो निज हेतन का ।टेक॥
धन जन मिल्यो मान यश किरति,
राज रियासत सुख मान का ।
का तोहि मिल्यो देखु रे मानुष,
तुम हो चेतन बेतन का ॥१॥
यह संसार सराय मुसाफिर,
दो दिन आये भोगन का ।
आज काल में कूंच तिहारो,
करो स्वरूप विवेचन का ॥२॥
भरम पसारा दुनियादारी,
नारि पियारी तन-धन का ।
क्षण में सबही नाश दिखावे,
जैसे मोती ओसन का ॥३॥
भूल भुलैया में दिन खोयो,
अब तो चेतो चेतन का ।
सीटी बजी रेल अब छूटे,
उठो मुसाफिर टेशन का ॥४॥
आज काल्ह में कूंच होयगा,
वासा होयेगा बन का ।
आश अभिलाष किया जो तूने,
रह जावे तेरे मन का ॥५॥

६०. पद

सारी रचना यहाँ की असार है,

रैन सपना बना संसार है ।।टेक।।

ना है माता कोई के न ताता,

मित्र भ्राता सगे झूठ नाता ।।

मिथ्या माया क फैला पसार है'

रैन सपना ....।।१।।

छिन में बालक जवानी को पाता,

छिन में हो वृद्ध जरजर दिखाता ।।

छिन में तज जाता सब व्योहार है,

रैन सपना ....।।२।।

एक से एक राजा वो रानी,

पानी के बुदबुदेवत् विलानी ।।

कौन रहता सदा बरकरार है,

रैन सपना ....।।३।।

झूठी माया में काहे को फूले,

धर्म परमार्थ काहे तू भूले ।।

छिन में धनवान होता भिखार है,

रैन सपना ....।।४।।

बाँध मुट्ठी यहाँ आप आये,

खोल के हाथ छूँछे हि जाये ।।

संग में कौड़ी न जाती तुम्हार है,

रैन सपना ....।।५।।

धन कुटुम्बी को निशिदिन सम्हाले,

धर्म परमार्थ वादे में टाले ।।

काल लेता अचानक हि मार है,

रैन सपना ....।।६

चेत जल्दी कमाई तु करले,
त्याग अभिमान मन से सम्हर ले॥
ना तो सहना पड़े यमका मार है,
रैन सपना ....।।७

स्वप्न है देह संसार सारा,
इसका है प्रेम करना गंवारा ॥
प्रेम अभिलाष गुरु पद क सार है,
रैन सपना बना संसार है ।।८

६१. पद

मनमें न लाओ कछु राग,
हो विरागी बाबा ।।टेक।।
घर धन कुटुम कबीला त्याग्यो,
जग्यो विरति अनुराग,
हृदय में जग्यो विरति अनुराग।
साधु गुरू से भेष पाइ के,
अब कस डगमग लाग ।। हो० ।।१।
कुल कुटुम्व को दुखी जो देखो,
सो निज कर्मन ताग,
पाप से जो निज कर्मन ताग।
करन सहाय जो उनकर जइहौ,
तुम्हरेचो लगिहैं दाग ।।हो०।।२।
आपन गैर कोई नहिं देखो,
सब निज मन अनुराग,

जगत में सब निज मन अनुराग,
अन्त समय में सब छुटि जइहैं,
आज काल दिन लाग ॥हो०॥३॥
आवागमन दुःख भय नाशक,
सद् विवेक वैराग,
गुरू का सद् विवेक वैराग।
ताको छोड़ि जगत में अरुझे,
यही तुम्हार अभाग ॥हो०॥४॥
याते जगत दुःखमय लखि के,
करो शुद्ध वैराग।
राग तजि करो शुद्ध वैराग।
दास अभिलाष मोह नहिं कीजै,
रहो गुरू पद लाग ॥ हो० ॥ ५ ॥

६२. पद

कहवाँ तू माने सुख जीव ! इस जड़ काया में ॥टेक॥
हाड़ से इसकी ठाट-ठटी है,
रग रग रक्त भराई।
मल मूत्रों से पूर्ण पिटरिया,
मांस चाम से छाई ॥
अति अपवित्र रचीव ॥ इस० ॥१॥
बाल वृद्ध की कठिन अवस्था,
रोग व्याधि अति घेरे।
भूख प्यास अरु शीत धूप में,
निशिदिन तहाँ तपेरे ॥

अति प्रतिकूल सदीव ॥ इस० ॥२
स्वारथ संगी जीव जगत के,
एक को एक सतावें ।
काम क्रोध मद लोभ निर्दयी,
अलग कलेज चबावें ॥
प्रतिक्षण जीव जलीव ॥ इस० ॥३
क्षण-क्षण बदलि विवश ह्वै जावे,
मोती ओस नशानी ।
स्वप्ना की सम्पति ज्यों झूठी,
त्यों झूठी जिनगानी ॥
मत अभिमान करीव ॥ इस० ॥४
दो दिन की है चटक चाँदनी,
फेरि अँन्धेरी आवे
चेत मुसाफिर मुक्ति बनाले,
चूकि अन्त पछितावे ॥
कोइ नहिं साथ चलीव ॥ इस० ॥५॥
जन्म मरण अरु गर्भवास के,
दैहिक दुःख घनेरे ।
मुक्ति हेतु तू नर तन पाया,
जल्दी चेत सबेरे ॥
दुख अभिलाष तरीव ॥ इस० ॥६॥

६३. पद

तुम जीव सदा निरधार अहो,
नर नाहक मोह का भार गहो ॥टेक॥

पितु मातु तियादिक मीत जिते,
तुमसे सब न्यारे हैं पंथी तिते।
जड़ ग्रन्थि लिये भवधार बहो,
तुम जीव सदा निरधार अहो ॥१॥
नहिं ईश्वर ब्रह्म न राम परं,
तुम ही सब कल्पि के भार धरं।
सब जानक मानक आप रहो,
तुम जीव सदा निरधार अहो ॥२॥
तुम सत्य अखण्ड अनूप अने,
जड़ देह वो गेह से पार भने।
बस फेरहु दृष्टि स्वरूप लहो,
तुम जीव सदा निरधार अहो ॥३॥
अब भार उतारि के पार बसो,
नर देह को पाय न फेरि फँसो।
नित सत्य स्वरूप में थीर रहो,
तुम जीव सदा निरधार अहो ॥४॥

६४. पद

पाया मानुष का तन, आज करले भजन, न भुलाना
तेरे जीवन का क्या है ठिकाना।
खानियों में भटकता तू आया,
आज अवसर तू नर तन को पाया।
भाग तेरे जगे, दाँव ऐसे लगे, मुक्ति पाना
मन को विषयों से अपने हटाना ॥ पाया० ॥१॥
स्वप्न की सम्पती में न फूले,

देख दो दिन की माया न भू
मृत्यु के बाद सब, ये रहें तेरे कब, घर खा
फिर तू क्यों होता इनमें दिवाना ॥ पाया० ॥
मृत्यु आकर अचानक घरेगी,
तेरी सब अक्ल कुछ न करेगी।
याते साधन में मन, करले अपनी लगन, तू जा
क्यों तू पथ में ही बैठा भुलाना ॥ पाया० ॥
विष के वत् भोग को छोड़ दे तू,
जक्त से चित्त को मोड़ दे तू।
नित स्वतःरूप भज, मन के अभ्यास तज, दद जल
शान्ति अभिलाष अपने में पाना ॥ पया० ॥

६५. पद

तू कहा मान मन, तेरा क्षण भंग तन, चेत प्या
करले साधन भजन तू सकारे ॥टे
पानी का बुलबुला देह तेरी,
होगी इसके विनशते न देरी।
तू विषय कीट बन,
हो गया मूढ़ मन, नसुधारे।
रत्न जीवन को विषयोंमें हारे ॥ तू कहा० ॥
धन कुटुम घर वो अधिकार पाया
स्वप्न की सम्पती झूठ माया।
तू असत जानकर,
इनका मत मान कर, त्याग सारे।
निज को भव बन्धनों से उबारे। तू कहा० ॥

पेट को भोग हित तू है धाया,
रात दिन न कहीं चैन पाया।
जाके सत्संग में,
ज्ञान के गंग में, न पखारे,
मन को मैला किये पाप धारे ॥ तू कहा० ॥३॥
जो है अपना तू उसको भुलाया,
जो न अपना उसी में लुभाया।
याते भव फन्द है,
नित्य ही द्वन्द्व है, दुःख सारे,
हो अजन्मा भरे जन्म धारे ॥ तू कहा० ॥४॥
सत्य चिद् शान्त निर्द्वन्द्व तू है,
देह से पार स्वच्छन्द तू है।
राग से मोक्ष हो;
बोध अपरोक्ष हो, दृश्य न्यारे,
नित्य अभिलाष पारख विचारे ॥ तू कहा० ॥५॥

६६. पद

नर तन भजन करन की बेरिया।
तेहि मन मूढ़ गवाँयो नाय ॥टेक॥
प्रकट पुहुमि तब रूदन ठान्यो।
परवश मल मूत्रहिं लपटान्यो ॥
खेलि खाय बालापन खोयो।
भय में समय बितायो नाय ॥१॥
कछु दिन बीते यौवन आयो।

विषय बिरह में मन भरमायो ॥
साधन योग्य अवस्था मन तू ।
विषयन माँहि सिरायो नाथ ॥२॥
ज्वानी गई वृद्धपन आयो ।
शिथिलगात बल-हीन दुखायो ॥
जेहि की आश किये सुख हेतू ।
सो कुल कुटुम दुरायो नाथ ॥३॥
दान धर्म में चित्त नहिं दीन्हें ।
नहिं सत्संग न प्रभु-पद चीन्हें ॥
जग विसराय न गो मन मारि के ।
शान्ति समाधि लगायो नाथ ॥४॥
सुबह शाम माया हित धाया ।
धन कुटुम्ब में मोह बढ़ाया ॥
अन्त समय अभिलाष न तेरे ।
कुछ भी हाथ में आयो नाथ ॥५॥

६७. पद

ध्यान गुरु के चरण में लगाये चलो रे ।
मुक्ति जीवन का लाभ कमाये चलो रे ॥टेक॥
प्रथम तू सन्त के सत्संग से सद्ज्ञान लहे ।
दोष दुर्गुण को त्याग सद्गुणों के साज गहे ॥
देह से भिन्न तू चैतन्य अजर अविनाशी ।
स्वरूप-ज्ञान हीन होके फिरे चौरासी ॥
याते निज रूप चिन्तन डटाये चलो रे ॥१॥
विषय विवाद में तू जन्म को बरबाद किया ।

लक्ष्यजीवन का क्या है ? इसको तू न याद किया ॥
सुबह से शाम तक तू पेट भोग हित धाया ।
पशू के तुल्य हीरा नर जनम को भटकाया ॥
चेति अब से न गाफिल गँवाये चलो रे ॥२॥
समय जो आज मिला फिर से न मिलने वाला ।
चेत ले आज नहीं अन्त में हो मुख काला ॥
जगत शरीर को तू मोह निशा से जागे ।
स्वरूप-ज्ञान के अभ्यास निरन्तर पागे ॥
दाग अभिलाष दिल का छुड़ाये चलो रे ॥३॥

६८. पद

तेरे जीवन के दिन तो हैं थोरे रे ।
काहे अभिमान में तू भुलेरे रे ॥टेक॥
चमक बिजली-सी दो दिन की है जवानी तेरी ।
भोग सम्पत्ति सभी होंगी बिरानी तेरी ॥
अन्त में माया मिटेगी कुटुम वो धन घर की ।
उजेली चार दिवस की है देखने भर की ॥
फिर तो भटकेगा जीवन अँधेरे रे ॥काहे०॥१॥
वायु की झोंक में दीपक की ज्योति जैसे है ।
पानी का बुलबुला जीवन तुम्हारा तैसे है ॥
श्वास जो आया पुनः न आये क्या हस्ती ।
चेत दीवाने छोड़ माया - मोह की मस्ती ॥
करले भक्ती भजन तू सबेरे रे ॥काहे० ॥२॥
जगत प्रपंच में सदा तू पड़ा मरता है ।
भजन भक्ती के लिये वादे किया करता है ॥

काल आकर तुम्हें तो एक दिन चबायेगा।
न कोई आके तुम्हें उस समय बचायेगा॥
याते अभिलाष जागे सबेरे रे ॥काहे०॥३

६९. पद

भैया! दो दिन की जिनगानी ये तुम्हार बाय,
देखो कर विचार आय नाय ॥टेक॥
जग में बड़े बड़े अभिमानी,
जैसे गले बतासा पानी।
रावण कंश बली दुर्योधन बेशुमार बाय ॥देखो०॥१॥
तू मत भूले देखि जवानी,
इसको दो दिन की मेहमानी।
फिर तो आय बुढ़ापा कर देवे लाचारबाय ॥देखो०॥२
उत्तम मानव तन को पाया,
तिसको विषयन भोग सिराया।
सुखको मूलभजन बिसराया, मनगँवार बाय।देखो०॥३
तजदे विषय विलास विकारी,
करले भजन भक्ति सुखकारी।
श्वासा गये फेरि न आवे क्या अखत्यार बाय।देखो०॥४
झूठी तन की आशा धरना,
होगा क्षण पल में ही मरना।
तू अभिलाष करे भव तरना गुरु अधारबाय।देखो०॥५

७०. पद

भैया! स्वारथ का ही साथी संसार बाय।
कोई न तुम्हार बाय नाय ॥टेक॥

भूले देखि कुटुम सुत दारा,
सगा सम्बन्धी मित्र पियारा।
तुम हो किसके कौन तुम्हारा।
करो विचार बाय ।।कोई०।।१।।
जिसको कहता मेरी मेरी,
स्वारथ वश नहिं फटते देरी।
देखो ! अपने नैन उघारी,
जग असार बाय ।। कोई० ।।२।।
जिनके हित तू पाप कमाया,
धनको जोरि-जोरि घर लाया।
कोई साथ न देंगे तेरे,
मरती बार बाय। कोई० ।।३।।
मूठी बाँध जगत में आये,
इक दिन हाथ पसारे जाये।
सपने की सम्पति में,
झूठा इतबार बाय।कोई०।।४।।
तज दे माया मोह सबेरे,
करले भजन भक्ति यहि बेरे।
ऐसा समय न आवे तेरे,
बारम्बार बाय ।।कोई०।।५।।
हुआ सबेर शाम फिर आई,
ऐसे जीवन जात सिराई।
तजि अभिलाष मोह ममताई,
करे सुधार बाय ।। कोई० ।।६।।

७१. पद

त्यागो मद्य मांस वो हिंसा कुविचार बाय,
धरो गुरु विचार बाय नाय ।। टेक ।।
मदिरा गाँजा भाँग वो बीड़ी,
ताड़ी तेज तमाकू सीड़ी ।
पी के धर्म बुद्धि धन बल से,
भये लाचार बाय ।। धरो० ।।१।।
तन धन नाश नशा से होवे,
आदत में पड़ि दिन-दिन रोवे ।
त्यागो सर्व नशीली आदत,
बड़ी बेकार बाय ।। धरो० ।।२।।
माँस है घृणा योग्य सुन भाई,
ताको खाते लोग पकाई ।
शूकर श्वान चील्ह वो गीधों,
का आहार बाय ।। धरो० ।।३।।
पशु को मारि काटि के खाते,
मानव मुर्दखोर हो जाते ।
लज्जा घृणा न मन में आती,
अहो तुम्हार बाय ।। धरो० ।।४।।
अपनी जान सभी को प्यारी,
क्यों तू देवे पीर अनारी ।
मानव दानव वो इन्शान,
बना शैतान बाय ।। धरो० ।।५।।
जितना जीव बधोगे भाई,

बदला देवैक पड़ी अघाई।
हिंसा सब पापों का पाप मूल;
सरदार बाय ॥ घरो० ॥६॥
तज दो हिंसा मन से भाई,
चोरी वो व्यभिचार बुराई।
पर तिय मात समान वो पर धन,
जानो छार बाय ॥घरो०॥७॥
कीजै साधुन की सेवकाई,
धर्म विचार में प्रेम लगाई।
कह अभिलाष यही मानव जीवन,
का सार बाय ॥घरो० ॥८॥

७२. पद

त्यागो हिंसा-मांस भाई दुखदाई करनी ॥टेक॥
हस्ती से कीड़े तक जितने, जीव जन्तु दिखलाइ।
शक्ति चले तक तिन्हें बचाओ, देव न दुःख कदाई।
तबहीं तुमहूँ सुख पाई ॥ दुखदाई करनी० ॥१॥
रज बीरज से मांस बना है, मल मूत्रहि लपटाई।
अति दुर्गन्ध अपावन देखो, दूर से रहा बसाई ॥
भलो मानुष कैसे खाई ॥ दुखदाई करनी० ॥२॥
सिंह स्यार भेड़हा बिलार, बकुला कूकर जो भाई।
मांस अहार इन पशु पक्षी का, तामस क्रूर कसाई ॥
चीलही गीधौ के खवाई ॥ दुखदाई करनी० ॥३॥
जीव बधन जो आज्ञा देवे, दूजे बधै जो लाई।
तीजे जो खरीद घर लावे, चौथे बेचै भाई ॥

पचयें काटि बनावें धोवैं, छठये जौन पकाई।
सतयें मांस जो पारुस करई, अठयें जौन चबाई॥
हिंसा का फल इन आठों को, लागै पाप अवाई।
धर्मशास्त्र में ऋषिमुनि आदिक, ऐसो कहा बुझाई॥
तातें आठों ये कसाई॥ दुखदाई करनी० ॥४॥
जीव बधै औ मांस भखै जो, तामसपन बढ़ि जाई।
दयाविचार शील सत श्रद्धा, मानुष गुण नशिजाई॥
मानब दानव ह्वै दिखाई॥दुखदाई करनी०॥५॥
मांस अहार में रोग अधिक है, वैद्य डाक्टर गाई।
जाहि पशू कै मांस खाय, ता पशु कै रोग उगाई॥
लोको परलोको नशाई॥ दुखदाई करनी०॥६॥
अन्न दूध फल साग मूल, मानुष का भोजन भाई।
तजो मांस अण्डा मछली, हिंसा पिशाचन भाई॥
सुन्दर तनधर नाहिं लजाई॥दुखदाई करनी०।७।
घर में मुर्दा मरै जो कोई, ता दिन अन्न न खाई।
बाहर से एक मुर्दा लावैं, ताको खायँ पकाई॥
देखो दुनिया कै बौराई॥ दुखदाई करनी० ॥८॥
जीव कै बदला जीव चढ़ावैं, अपने लरिकन ताईं।
यही पाप से अन्य जन्म में, लरिके जियें न भाई॥
झूठे माने देवी दाई॥ दुखदाई करनी० ॥९॥
जीव बधे का बदला तुमका, देवै क परी अघाई।
बकरा मुर्गा का तन पइहौ, काटै तुम्हें कसाई॥
यामें जानो झूठ न राई॥ दुखदाई करनी० ।१०।
अपनी जान समान सभी को, जानो प्यारे भाई।

दया मेहर अभिलाष धरो दिल, याही मानवताई ॥
नहिं तो नर-पिशाचहो भाई।।दुखदाईकरनी०॥११॥

७३. पद

त्यागो मदिरा के पियाइ मानो भाई बतिया ।।टेक।।
मदिरा पिये बुद्धि सब नाशै, धन कै होय सफाई ।
आदत बढ़ै चैन नहिं आवै, चिन्ता रही जलाई ॥
चोरी कइकै मदिरा लाइ ॥ मानो भाई० ॥१॥
पहिला प्याला के पीते ही, तोता अस तुतराईं ।
दुसरे प्याला के पीते खन, घोड़ा अस हिंहियाई ॥
झूमै हाथी सो सुंसुवाइ ॥ मानो भाई० ।।२॥
चौथे प्याला के पीते ही, गदहा अस होइ जाई ।
जहाँ तहाँ नाली कचड़ा में, लोटे लाज बिहाई ॥
कूदै एक-एक पर धाई ॥ मानो भाई० ॥३॥
निशिदिनकरैं कुसंग को सेवन, सब दुर्गुण उपजाई ।
चोरी जारी करै लबरई, ताड़ी पीट हहाई ॥
तन कै लाज शर्म बिसराई ।। मानो भाई० ॥४॥
मदिरा पीना महा पाप है, वेद सन्त कहैं भाई ।
याते मदिरा पीना त्यागो, कह अभिलाष बुझाई ॥
यहि में तुम्हरो है भलाई ॥ मानो भाई० ॥५॥

७४. पद

दीजै अमल हटाई मेरे भाई अमली ॥टेक॥
गाँजा चरस बढ़ा दुख दाई, खाँसी दमा बुलाई ।
तन का रक्त भस्म कै डारै, खर्चा बढ़ै सवाँई ॥
नशवा बुद्धी को नशाई ॥ मेरे भाई० ॥ १ ॥

बीड़ी औ सिगरेट, इसी गाँजा का लहुरा भाई।
विद्या बुद्धि धर्म धन बल से होवे हाथ सफाई॥
तेहि पर बाबू को सुहाई ॥ मेरे भाई० ॥ २॥
कोई कच्ची सुर्ती खावै, भोरे भीख मँगाई।
बीच सभा में करै थुकाई, मुहवो लगै बसाई॥
सुर्ती झूठो देबय बोलाई ॥ मेरे भाई० ॥ ३॥
देखी देखा घर कुटुम्ब के, सब अमली होइ जाई।
सद्‌गुण घटैं दोष तन बाढ़ै, चोरिउ रारि कराई॥
त्यागो त्यागो दुखदाई ॥ मेरे भाई० ॥ ४॥
भाँग पिये से बुद्धि भ्रष्ट ह्वै, ज्ञान ध्यान नशि जाई।
दोहरा पान अमलसब दुखदा, चिन्ता खर्च बढ़ाई॥
आदत बारम्बार सताई ॥ मेरे भाई० ॥ ५॥
याते सबैं अमलको त्यागो, तन मन शुचि होई जाई।
व्यर्थ हर्ज खर्चा से छूटै, चित परसन्न रहाई।
सुमखय जीवन अपन बिताई ॥मेरे भाई० ॥६॥
जो धन होय धर्म में खर्चो, पर उपकार कमाई।
भक्ति धर्म करि सुयश कमाओ, यह अभिलाष हिताई
याते अमल बिहाई ॥ मेरे भाई० ॥ ७॥

७५. पद

थोरे दिन की प्रभुताई तू न भूलो मनुवाँ ॥ टेक।
देखि जवानी भूल न जाना, थोरे दिन की भाई।
दो दिन में बूढ़ापन आवै, खाँसी दमा सताई॥
लाठी लैकै चलिबौ भाई ॥ तू न भूलो० ॥ १॥
नारी कै सुन्दरताई, औ लरिकन कै तुतराई।

इन माया में भूल न जाना, सबसे होय जुदाई ।।
यक दिन छुटिहैं सगे भाई भू ।। तू न भू लो०।।२।।
घूस ठगी चोरी छल करिकै, माया लियो बढ़ाई ।
धन के साथी कुल कुटुम्ब हैं, पाप न कोई बटाई ।।
अकसर देइहौ बदला भाई ।। तू न भूलो० ।।३।।
कौड़ी-कौड़ी माया जोड्यो, धर्म भक्ति बिसराई ।
भिक्षुक को भिक्षा नहिं दीन्हों, दुखी न भयो सहाई ।।
सारी बिरथा भई कमाई ।। तू न भूलो० ।। ४ ।।
पर उपकार धर्म में अपनो, देय न द्रव्य कमाई ।
व्यास देव तेहि चोर कहत हैं, श्रीभागवत में गाई ।।
पूछो पण्डितन से जाई ।। तू न भूलो० ।। ५ ।।
रूप जवानी विद्या बानी, पाइकै गयो भुलाई ।।
सत्संगत में भूलि न बैठ्यो, साधु की हँसी उड़ाई ।।
तनिको लज्जा हया न आई ।। तू न भूलो० ।।६।।
माया के मद में मत भूलो, ये नश्वर दुखदाई ।
यक दिन सब धन धाम छुटैंगे, कर्म शुभाशुभ जाई ।।
अपनी भोगिहो करी कमाई ।। तू न भूलो० ।।७।।
पद पाकरके भूल न जाना, चलो न्याय से भाई ।
नहिं तो पाँच बरस पर भैया, दूसर होय चुनाई ।।
जइहौ कनवाँ पकरि हटाई ।। तू न भूलो० ।।८।।
साधु गुरू कै कहा न मान्यो, कीन्हों पाप अघाई ।
यक दिन पास पड़ै काल को, बात न मुख से आई ।।
भुलिहैं सारी चतुराई ।। तू न भूलो० ।।९।।
तुलसी सूर कबीर गुरू वो, सब सन्तन जो गाई ।

वही बात अभिलाष तेरे को, कहते पुनः बुझाई।
चेतो प्यारे नर-तन पाई ॥ तू न भूलो० ॥१०

७६. पद

मरने के बाद तेरे, कुछ भी न बच रहेगा।
तू चेत ऐ दिवाने, किस नींद सो रहा है ॥टेक
ये पुत्र धन कुटुम्बी,
वसुधा महल वो रमणी।
प्रभुता वो मान तेरा,
सपना-सा हो रहा है ॥१॥
नर तन भजन का अवसर,
फिर शीघ्र न मिलेगा।
कंकर विषय को लेकर,
मणि-मुक्ति खो रहा है ॥२॥
ये कर्मभूमि नर तन,
मुक्ती का बीज बो ले।
क्यों मूढ़ता से अपनी,
बिष बीज बो रहा है ॥३॥
कहने की बात छोड़ो,
करने में मन लगाओ।
अभिलाष क्यों न अपना,
मन-मैल धो रहा है ॥४॥

७७. पद

जग ः जीवनो दिन चार ॥टेक॥
रू यौवन युक्त आयुष,

लसत ललिता दार।
सुमुख सुत अनुकूल सुख,
नहिं इनहिं किञ्चित मार ॥१॥
गृह कुटुम्ब शरीर सम्पति,
मान सुख अधिकार।
बाढ़ जल सम उभय दिस को,
कौन इन इतबार ॥२॥
मोक्ष साधन करन को तोहि,
मिल्यो नर तन द्वार।
काक इव तेहि भोग लोलुप,
भ्रमत कीन्हों ख्वार ॥३॥
जग सम्बन्ध शरीर वैभव,
नाश वान असार।
ह्वै विमुख अभिलाष जग से,
आप में थिति सार ॥४॥

७८. पद

कहत यह तन को मेरो-मेरो ॥टेक॥
पग कटि उदर वक्ष कर ग्रीवा,
चक्षु घ्राण आनन को तेरो ॥१॥
छित जल अनल वायु की रचना,
मृतक होत नहिं तन को देरो ॥२॥
वैरी रूप लगो तन तुम्हरे,
सब सन्ताप शूल को ढेरो ॥३॥

त्यागन योग्य अशुचि तन निश्चय,
त्यागि सुखी ह्वै जाहु सबेरो ।।४।।
तू चेतन अभिलाष असंगी,
तन अशुद्ध दुख प्रद जड़ केरो ।।५।।

७६. पद

भजन बिन बीत गयो पन तीन ।।टेक।।
गर्भवास से बाहर आयो,
मल मूत्रहिं में लीन ।
खेलत खात गयो बालापन,
मूढ़ दशा दुख दीन ।।१।।
ज्वान भयो तब काम सतायो,
भोग्यो भोग मलीन ।
पेट भोग हित निशिदिन धायो,
रतन जवानी छीन ।।२।।
वृद्ध भयो तृष्णा अति बाढ़ी,
चिन्ता अमित नवीन ।
जर जर गात लात बातन सहि,
अन्त काल मुख लीन ।।३।।
साधन करन योग मानुष तन,
तेहि भोगन में भीन ।
कह अभिलाष मूढ़ मन यहिविधि,
जनम अनन्तन कीन ।।४।।

८०. पद

मन तू भोग तजो दुखदाई ।। टेक ।।

शब्द स्पर्श रूप रस गन्धौ,
अति रमणीय सुहाई
भृङ्ग कुरङ्ग मतङ्ग पतङ्गी,
मीन मृत्यु दुख पाई ॥ १ ॥
पाँचों चोर बसत घट भीतर,
दश ठग ठगत सदाई ।
तेहि के बीच कहा सुख सोवत,
जागो रे मन भाई ॥ २ ॥
भोग से रोग शोक चिन्ता अति,
तृष्णा ताप जलाई ।
जनम मरण दुख आधि व्याधि में,
जीवन जात बिताई ॥ ३ ॥
दम्पति पर्श भोग पाँचों विष,
हन्ता मान बड़ाई ।
सब संकल्प त्यागि निज पद थिर,
तू अभिलाष सदाई ॥ ४ ॥

८१. पद

हमारे मन भाषो वचन रसाल ॥ टेक ॥
जबहीं लाय धरत मद मन में,
तबहिं बनत तुम काल ।
दृश्य भास में हन्ता करिके,
परत सबन पर लाल ॥ १ ॥
नहिं अधिकार किसी पर तेरो,
व्यक्ति वस्तु जग जाल ।

केहि को करत स्ववशता मनमें,
धीर सम्हाल सुचाल ॥ २ ॥
कटु कुठार खर खर भर भर कहि,
नहि दुख देहु मजाल।
सत्य मिष्ट अति अल्प सबन हित,
बोलो धीर सम्हाल ॥ ३ ॥
कटु भाषण को कारण मद है;
भारत वाणी भाल।
तू अभिलाष शोधि मद त्यागो,
मति दीजै उर साल ॥ ४ ॥

८२. पद

हमारे मन जीव दया उर धारो ॥ टेक ॥
जब तुम दुख चाहत नहि अपना,
किमि दुख देत परारो।
सब स्वतन्त्र प्राणी कर्मन वश,
केहि पर तव अधिकारो ॥ १ ॥
तुम हो मनुष सुजान सबल,
सब भाँति समर्थ विचारो।
पशु मृग मीन अण्ड खग निर्बल,
दीन गरीब लचारो ॥ २ ॥
सबल को चही अबल की रक्षा,
नहि तेहि मारि अहारो।
है धिक्कार जीभ के स्वारथ,
बनत चील्ह बक स्यारो ॥ ३ ॥

मुर्दा देखि अशुचि घर मानत,
खात न ताहि लजारो।
अशमशान निज उदर बनावत,
पापी नरक दुवारो ॥ ४ ॥
तृण भर पीर देहुगे काहू,
सो बढ़ि व्याज पहारो।
लोक और परलोक भुगतिहौ,
दुख अभिलाष अपारो ॥ ५ ॥

८३ पद.

हमारे मन भरम से दूरि रहो ॥ टेक ॥
जड़ चेतन दो वस्तु अनादी, तीसर और न हो।
जड़ चौ तत्व जीव नित नाना, उभय सम्बन्ध गहो ॥१
जड़ के गुण धमन से षट् ऋतु, सृष्टि कला सबहो।
जग अनादि नहिं आदि अन्त कोइ चेतन ध्यास गहो ।२
पंच विषय अरु देह मोह से, पुनि पुनि जन्म लहो।
तजि सम्बन्ध-राग जड़-जग से, मुक्त विदेह रहो ॥३
बन्ध मुक्ति का और न दाता, ईश्वर ब्रह्म जहो।
राग अबोध बन्ध अरु मुक्ती, ज्ञान विराग सहो ॥४
बोध प्रखावन हार पारखी, सद्गुरु-सन्त महो।
तिनकी शरण लागि संसृति तरि, नहिं अभिलाष बहो५

८४. पद

हमारे मन अपनो काज सुधारो ॥ टेक ॥
घर धन नारि पुत्र तन यौवन,
इक दिन होहिं परारो ॥१॥

अपनी करनी पार उतरनी,
नहिं कोइ अन्य सहारो ॥२॥
भोग-रोग तजि योग सम्हारो,
भजन करन को बारो ॥३॥
कह अभिलाष चतुर सोइ जगमें,
जो निज बन्ध निवारो ॥४॥

८५. पद

हमारे मन रहनी नीक धरो ॥ टेक ॥
बिन रहनी नहिं ज्ञान काम दे,
नहिं भव बन्ध टरा।
नहिं चित शान्त होत नित एकरस,
प्रति क्षण जीव जरो ॥१॥
सत भाषण सन्तोष क्षमा,
समता विराग जबरो।
भोग त्याग नित निरस रूख मन,
भजन विचार करो ॥२॥
तजि परवृत्ति निवृत्ति को साधो,
मन को परख करो।
राग द्वेष ममता सम्बन्ध तजि,
है असंग विचरो ॥३॥
पर के दोष कभी न देखो,
अपनी सोच करो।
प्रतिक्षण मन से परखि पार रहि,
यहि अभ्यास करो ॥४॥

तन प्राणी पदार्थ अरु जग से,
हवै निराश सबरो।
महा भयानक देह ग्रन्थि से,
तू अभिलाष तरो ॥५॥

८६. पद

गुमानी मन पाप को बीज कियो रे ॥ टेक ॥
जीव बधे अरु आमिष खाये,
पुनि मदिरा को घूँट पियो रे ॥ १ ॥
पर धन हरे त्रिया पर भोगे,
पर दुर्गुण में चित्त दियो रे ॥ २ ॥
पर सुख देखि जले निशिवासर,
पर दुख देखि के मोद लियो रे ॥ ३ ॥
मुक्तिद्वार अभिलाष पाय शठ,
हठ वश यमके द्वार गियो रे ॥ ४ ॥

८७. पद

सुखी कोई विरले ज्ञानी सन्त ॥ टेक ॥
विषयन त्यागि इन्द्रियन जीते,
मन को मारि रहत एकन्त ॥ १ ॥
दँव समान युवती को समझत,
रहत सदा उपराम अनन्त ॥ २ ॥
चाह कामना आशा तृष्णा,
मन संकल्प करत सब अन्त ॥ ३ ॥
जड़ तन से निज रूप पृथक करि,
दुख सुख हर्ष शोक गत तन्त ॥ ४ ॥

तजि अभिलाष आश जग तन की,
जीवन मुक्त स्ववश विचरन्त ॥ ५ ॥

८८. पद

हमारे मन-मोह-माया विसराओ ॥ टेक ॥
जेहि को त्यागि विरक्ति को धारे,
तेहि पुनि किमि ललचाओ ।
विषयन को विष सम करि जानो,
इन्द्रिन जीति रहाओ ॥ १ ॥
सुत दारा गृह कुटुम कबीला,
इनसे प्रेम हटाओ ।
रचि कै स्वाँग सती कर प्रथमै,
ताप देखि न हँसाओ ॥ २ ॥
धरि कै वेष पुनीत साधु कर,
जो मन भोग लुभाओ ॥
तो निज गरा काटि मरि जाओ,
पर जग मुख न दिखाओ ॥ ३ ॥
ह्वै के विमुख भोग विषयन से,
विरति विवेक बढ़ाओ ॥
सम्मुख मरण वीर की शोभा,
दृढ़ अभिलाष रहाओ ॥ ४ ॥

८९. पद

काह भरोस क्षणिक तन केरो ॥ टेक ॥
छिन छिन होत और कै और,
इक छिन स्ववश न तेरो ॥१॥

घन घमण्ड जल बुन्द तड़ित सम,
विनशत लगत न देरो ॥२॥
बाल युवा वृद्धापन में ह्वै,
रोग ग्रसित दुख ढेरो ॥३॥
तजि अभिलाष देह की आशा,
इह छिन भजन करेरो ॥४॥

९०. पद

कौन गुमान भजन को भूले ॥ टेक ॥
जेहि तन में तुम वास करत हो,
इक दिन होइहैं धूले ॥ १ ॥
सुत नारी कोइ साथ न जइहैं,
जाहि फिरत हौ फूले ॥ २ ॥
उत्तम जनम अकारथ बीतत,
मद माया में झूले ॥ ३ ॥
कह अभिलाष मूढ़ता कारण,
पुनि पुनि भव में झूले ॥ ४ ।

९१. पद

धरम बिन कौन तुम्हारो संग ॥ टेक ॥
धन सुत नारि साथ न जइहैं,
कंचन काया होइहैं भंग ॥ १ ॥
मन अनुकूल मित्र छुटि जइहैं,
मिटि जइहैं सब मनके रंग ॥ २ ॥
नात गोत कोइ काम न अइहैं,
पद अधिकार छुटैं सब अंग ॥ ३ ॥

कह अभिलाष साथ सब झूठा,
कर्म शुभाशुभ तुम्हरो संग ॥ ४ ॥

९२. पद

भजन बिन मानुष जनम गयो ॥ टेक ॥
खायो पियो विषय सुख भोग्यो,
पशुवत जनम छयो ॥ १ ॥
इन्द्रिन दल्यो न मन को मारयो,
नहिं सतसङ्ग कयो ॥ २ ॥
जीवन लाभ विषय सुख मान्यो,
पाप को बीज बयो ॥ ३ ॥
सींग पूँछ बिन होय पद संयुक्त;
मानुष पशू भयो ॥ ४ ॥
तदपि चतुर अभिलाष कहत निज;
यह आश्चर्य ठयो ॥ ५ ॥

९३. पद

मनुज तन पाय सुसंग न कीन्हें ॥ टेक ॥
अजर अमर निर्मल उर चेतन,
तेहि विवेक से कबहुं न चीन्हें ॥१॥
पर दुख हरे न पर अघ त्यागे,
धर्म दान में चित नहिं दीन्हें ॥२॥
निशिदिन भोग लोलुपी नाचत,
पचत विषय मद पीन्हें ॥३॥
सन्तन संग प्रेम सेवकाई,
ह्वै विनम्र गुरु भक्ति न कीन्हें ॥४॥

सद्गति से अभिलाष विमुख ह्वै,
पुनि पुनि पशु-पक्षी तन लीन्हें ॥५॥

९४. पद

भजन बिन तन धरि काह करी ॥ टेक ॥
नौ मासा माता के गर्भ, उल्टे लटकि जरी।
प्रगट पुहुमि जब बाहर आयो, रोवत दिन गुजारी ॥१
खेलि खाय औ पढ़न लिखन में, कछु दिन बीत परी।
ज्वान भयो भामिन मन भायो, ज्ञान भक्ति बिसरी ॥२
नारि पुत्र कुल कुटुम देखिके, ममता मन पसरी।
ढोवत भार गयो मानुष तन, मोक्ष आयु तुम्हरी ॥३
वृद्ध भयो पानी नहिं पूछैं, दुर-दुर सबहिं करी।
नारि पूत बुढ़ऊ का डाँटे, काल तुम्हें न धरी ॥४
कबहुं न इन्द्री मनको मारयो, नहिं सत्संग करी।
आज काल में समय बितायो, मौत की फाँस परी ॥५
यह संसार स्वप्न को साथी, देखत काल चरी।
तू अभिलाष परख में थिर हो, संसृति सिन्धु तरी ॥६

९५. पद

मन ! सद्गुण हृदय में धारु ॥ टेक ॥
शील सरल स्वभाव सहजिक, शान्ति सहन सुचारु ॥१
शिष्ट सौम्य सप्रेम सब सन, राग द्वेष निकारु ॥२
सजग सत् सन्तोष समता, सम सबोध सम्हारु ॥३
स्व-स्वरूप समाधि शद्गुरु, सीख सन्त सेवा-रु ॥४
दीन दाया दान दिल दस, दमन मन संहारु ॥५
वर विवेक विराग विष सो, विरुज वीर विचारु ॥६

धाम धन धरणी धरणि, तन मन विमोह विगारु ॥७
नित निरत अभिलाष निज में, धीर धी धरु सारु ॥८

६६. पद

क्षणिक तन क्षण ही में जाई नशाय ॥टेक॥
तजि सद्पन्थ जगत में लाग्यो,
मोर-मोर गोहराय ।
तन धन तिय परिवार परोसी,
यह सब हीं छुटि जाय ॥ १ ॥
आवे काल धरे जब श्वासा,
कोई न करे सहाय ।
बरबस पकरि गर्भ लै जावै,
कोमल तन कोम्हिलाय ॥ २ ॥
चारि जने मिलि खाट उठावें,
लै मरघट को जाँय ।
गाड़ि जारि सब धूरि मिलावैं,
जो तन प्रिय अधिकाय ॥ ३ ॥
यह संसार सत्य करि मान्यो,
निपट स्वप्न जो आय ।
देखत काल कलेवा प्राणी,
तबहु न सोच समाय ॥ ४ ॥
आज काल मत टारो बन्दे,
लो परलोक बनाय ।
नहीं अभिलाष अन्त पछितइहौ,
काल धरे जब आय ॥ ५ ॥

६७. पद

धरम इक अपने जइहैं साथ ॥ टेक ॥

मात कहे ये पुत्र हमारो,
पुत्र कहे ये बाप ।
भाई कहे हमारो साथी,
नारि कहे मम नाथ ॥ १ ॥

कर दै-दै उर मात रोवे,
बहिन भतीजा तात ।
सगे सहोदर बाहर रोवे,
नारि रोवे दै माथ ॥ २ ॥

दरवाजे तक नारी जावे,
घर बाहर तक मात ।
चिता भूमि तक सगा सहोदर,
हंस अकेला गाथ ॥ ३ ॥

जेहि तनमें प्रियता अति गाढ़ी,
सो तन देखि डेरात ।
चार जने मिलि खाट उठावें
लै मरघट को जात ॥ ४ ॥

कुल कुटुम्ब तन महल खजाना,
ओहदा मान अगाध ।
रंच सहाय करें नहिं कोई,
कर्म भोग दुख साथ ॥ ५ ॥

करन होय सो जल्दी कर लो,
अवसर बीतो जात ।

कूँच समय अभिलाष तिहारी,
नर होइहौ बे हाथ ॥ ६ ॥

९८. पद

भजन बिन कैसे निबहौ ?
नर जइहौ बिराने देश ॥ टेक ॥
मात पिता नारी सुत बन्धू,
महल खजाना भेष ।
सुन्दर देह जवानी विद्या;
कोई न जइहैं लेश ॥ १ ॥
दो दिन मिली जवानी जीवन,
मोक्ष लेने को शेष ।
तेहि को खोयो मोह माया में,
पछितइहौ पर देश ॥ २ ॥
धर्म भक्ति सन्तन की सेवा,
नहिं सतसंग करेस ॥
टट्टू बने हाट के जैसे,
अन्त खाय मुख खेस ॥ ३ ॥
गई सो गई आज से चेतो,
दो पल जीवन शेष ।
करु अभिलाष भजन भक्ति में,
नहिं दुख पइहौ ठेस ॥ ४ ॥

९९. पद

वीर वही मन इन्द्रिन जीते ॥ टेक ॥
पंच विषय आसक्ति को त्यागे,

देह भाव से रीते ।
सकल पिण्ड ब्रह्माण्ड की आशा,
त्यागि परख निर्भीते ॥१॥
बाह्य दौड़ सब जिनके नाशे,
नित सन्तोष पियूते ।
भास दृश्य तजि स्थिर भासिक,
जन्म मरण दुख बीते ॥२॥
सेवा प्रभुता मान विषय सुख,
शूल रूप बिपरीते ।
पारख परख लक्ष्य मन स्थिर,
जीवनमुक्ति सुख याहि कहीते ॥३॥
मन का नष्ट परम पद जानो,
यह पुरुषार्थ बलीते ।
सोइ अभिलाष गहो दृढ़ निश्चय,
मुक्ति लहौ जग तीते ॥४॥

१००. पद

भजन बिन नर-तन माटी को मोल ॥५॥
भूषण खाद हाड़ न बनते, चाम न बनती ढोल ।
नरका मांस काम नहिं आवे, गाड़ि जारि करि भोल ॥१
विषय भोग से श्रेष्ठ कहो जो, यही ठीक नहिं बोल ।
बन्दर श्वान शूकरी-शूकर, भोगत विषयन रोल ॥२
शिश्न उदर पोषत पशु पक्षी, तैसे नर को खोल ।
भक्ति विवेक भजन नहिं संगत, नहिं सद्गुण अनमोल ॥३
स्वप्न सनेही जगत कुटुम्बी, क्यों भूले तू डोल ।
ये अभिलाष क्षणहिं में छूटे, गहु गुरु भक्ति अमोल ॥४

१०१. पद

धरम बिन तन की कौन बड़ाई ॥टेक॥

खात पियत पाँचों सुख भोगत, पशु पक्षी कृमिटाई।
तेहिसे काह श्रेष्ठ निज मानो, जब वहि गुण अपनाई।
नर तन पायो मोक्ष लेन को, सो पशु भोग गँवाई।
तेहि पर बनत ज्ञान गुण संयुत यह तेरो लघुताई॥
हाड़ मांस मल मूत्र अपावन, चाम केश लपटाई।
ज्वर जूड़ी पित बात कफनसे, घेरि अमित दुखदाई॥
विवश रूप शूलत तन जिवको, तेहि निर्वाह सताई।
तपत जीव भरमत तन मग में, निशिदिन परत रोवाई॥
शील दया सद्गुण नहिं उर में, भक्ति धरम मृदुताई।
जस पशु तस नर दोय न जानो, नरतन व्यर्थ नशाई।
सुख चाहो सद्गुण उर लावो, सत्संगत सुखदाई।
बिन अभिलाष भजन नरतनफल, जन्मि पुनःमरिजाई।

१०२. पद

मन ! करु भोग से वैराग ॥ टेक ॥

दुःख मूल समूल यह, संसार विष दंव नाग ॥१
अति अपावन निरय तन, सब विषय भोग सराग ॥२
स्वार्थ को संसार साथी, व्यर्थ ममता लाग ॥३
भोग सब संयोग नश्वर, तड़ित घन फन पाग ॥४
भोग दम्पति हेतु संसृति, जानि हे मन ! भाग॥
तजुसुख जगत अभिलाष, करुनिज रूपमें अनुराग ॥६

१०३. पद

मन ! तजु प्रेम दम्पति भोग ॥ टेक ॥

तीन ताप उपाधि तन को, शूल मर्णज शोग।

याहि तो सब दुःख अति, जेहि गनत सुख सबलोग ॥१
र्म को जिमि भूत लागत, यथा बौरो कोग।
अथिर तन मन बकत अकबक, त्यों प्रमाद मनोग ॥२
न्म युग को विकट वैरी, काम काल कुरोग
याहि तो धरि स्वप्न तन,पुनि पुनि भ्रमत भवशोग ॥३
द्य कृमि मल कोष निन्दित, दार त्यागन योग।
नि सुख किमि पचत पामर नचत तन मन मोघ ॥४
च विषय को विष निरखि,प्रमदा प्रबल अघओघ।
क्ति बोध विराग रत, गो मन स्ववश करु योग ॥५
ब प्रकार विकार परिहरि, काम मद मन ढोंग।
तनिरत अभिलाष चिन्तन, स्वतः रूप विशोग ॥६

१०४. पद

करो मन ! भजन मनुज तन पाइके ॥टेक॥
काम-क्रोध भय लोभ मोह मद,
शोक द्रोह बिसराइ के।
तोष दया सत शील भक्ति,
समता विराग अपनाइ के ॥१॥
बड़ी भाग्य यह शुभ तन पायो,
त्रय खानिन से आइके।
अबकी चूके फिर रहि जइहौ,
दुखहिं में दिवस बिताइ के ॥२॥
माया के मद में मत भूलो,
धन कुटुम्ब को पाइ के।

आवत जात इन्हें नहिं देरी,
सपन समान बिलाइके ॥३॥
भोगन से सुख कबहुं न होइहैं,
सकल जगत धन पाइके।
भोग त्याग सन्तोष धर्म से,
शान्ति अचल सुख दाइके ॥४॥
तन धन जगत भोग की आशा,
मन से सकल दुराइके,।
नित अभिलाष परमपद चिंतन,
गुरु पद प्रीति दृढ़ाइ के ॥५॥

१०५. पद

तजो मन ! काम काल दुखदाई ॥ टेक ॥
कोमल रूप धारि के आवे,
तन में सुख दरशाई।
नारि पुरुष व्याकुल दोउ होवें,
ज्ञान ध्यान बिसराई ॥ १ ॥
भक्ति धरम परलोक से छूटैं,
सत्संगत छुटि जाई।
बोध विराग मुक्ति सुख शांती,
सब दुर्गम होय जाई ॥ २ ॥
धन बल विद्या बुद्धि तेज यश,
सद्गुण सुख विनशाई।
रोग व्याधि चिन्ता से आतुर,
जलत चाह चित लाई ॥ ३ ॥

सकल शोक औ जन्म मरण को,
बीज काम दिखलाई ।
याको त्यागि नहीं दुख जग में,
जीवन सुखद बिताई ॥ ४ ॥
पाँचों विषय देह आसक्ती,
त्यागि परम पद पाई ।
तब अभिलाष सकल दुख छूटे,
जब नहिं चाह चलाई ॥ ५ ॥

१०६. पद

अब हम बोलब वचन सम्हारी ॥ टेक ॥
नहिं कटु कहब न निन्दा करिबै,
नहीं देब केहु गारी ।
कमी देखि नहिं हंसब कोईको
अपनी ओर निहारी ॥ १ ॥
तर्क वितर्क न करब काहु से,
हन्ता हृदय निकारी ।
नहिं झुंझलात न ईर्षा करिबे,
नहिं बोलब दुतकारी ॥ २ ॥
बोलब सत्य मधुर प्रिय निर्छल,
अहकार मद जारी ।
शासन ममता भार त्यागि के,
कर्तब शील विचारी ॥ ३ ॥
झूठ खर्स अश्लील बहिर मुख,
हार जीत तजि सारी ।

अब अभिलाष रहब पारख महँ,
अमृत सिन्धु सदारी ॥ ४ ॥

१०७. पद

काह भयो नर तन को पाये ॥ टेक ॥
पक्ष अष्ट दश गर्भ कुण्ड में,
जलत औंध मुख दायें ।
अति दुख सहित पुहुमि जब आयो,
कहाँ-कहाँ चिल्लाये ॥ १ ॥
शिशुपन मल मूत्रहि में बीत्यो,
अति अबोध दुख दाये ।
बालापन रोवत खेलत गौ,
ज्वानि में काम सताये ॥ २ ॥
अनुज - वधू, सुत-बधू न समझ्यो,
जाति कुजाति भुलाये ।
लाज धरम परलोक लोक को,
सबहि पे धूरि चलाये ॥ ३ ॥
मात पिता की सेवा न कीन्हों,
पर उपकार न भाये ।
नहि अनाथ पर करुणा कीन्हों,
दया शील न सुभाये ॥ ४ ॥
सत्संगत भक्ती नहिं कीन्हों,
नहिं कछु धर्म कमाये ।
भोजन छाजन भय निद्रा
मैथुन ममता में सिराये ॥ ५ ॥

अनुज तनुज तनया तिय तन धन,
महल मकान रचाये।
तीन पाँच करि ठगि-ठगि खाये,
याहि में चतुर कहाये ॥ ६ ॥
ज्वानी ते अधेड़पन बीत्यो,
अति जर जर पन आये।
हीलत दाँत श्वेत कच कूबर,
तिमिर नैन में छाये ॥ ७ ॥
बधिर श्रोत शिथिलित तन इन्द्री,
खाँसी कफ घिरि आये।
तदपि मोह तृष्णा नहिं छोड़त,
नहिं प्रभु के गुण गाये ॥ ८ ॥
मन इन्द्री को स्ववश न कीन्हों,
नहिं अविनाशी ध्याये।
कह अभिलाष मूढ़ मन दुख में,
यहि विधि जन्म बिताये ॥ ९ ॥

१०८. पद

धरम बिना कोई साथ न जाई ॥ टेक ॥
मात पिता कुल कुटुम भतीजा,
प्रिय नारी सुखदाई।
नात मीत अरु सगा सहोदर,
सब क्षण में छुटिजाई ॥१॥
कुल धन बिद्या रूप जवानी,
ओहदा महल बड़ाई।

आज काल में सब छुटि जइहैं,
कर्म भोग फल पाईं ।।२।।
यह तन छोड़ि अन्य तन धारयो,
चौखानिन में जाईं ।
जो धन माल अपने करि राख्यो,
सो तहँ काम न आई ।।३।।
साधु देखि तब तो अनखायो,
कुकरम प्रेम लगाई ।
अब पशु कीट नरक तन धै-धै,
रोय-रोय पछिताई ।।४।।
स्वप्न समान जगत की माया,
अन्त समय कोइ नाईं ।
सम्बल करो राह कर प्यारे,
केहि अभिलाष भुलाई ।।५।।

१०६. पद

हमारे मन कोई नहीं अपना ।। टेक ।।
स्वारथ के साथी सब देखो, नटखट जगत जना ।
तेहि में कहो कौन है काको, पन्थी जीव बना ।।१
दश दिन के सम्बन्ध में भूले, माने सब अपना ।
इक इक दिना वियोग सबन से, पइहो दुखहि मना ।।२
दो दिन की है चटक चाँदनी, फिर अन्धेरि घना ।
तन धन यौवन कुटुम कबीला, नाशें ओस कना ।।३
योग वियोग धनी औ निर्धन, नट ज्यों स्वाँग बना ।
यह संसार निपट त्यों दर्शे, ज्यों रजनी सपना ।।४

करि विचार निस्सार जगत यह, झूठी सब रचना ।
तजि अभिलाष मोह ममता सब, गुरु के नाम जपना ।५

११०. पद

ज्ञान बिना मन मोह न छूटे ॥
तीरथ बरत योग जप तप करि,
नाना कर्मन जूटे ॥ १ ॥
जब तक सद्गुरु साँच न भेंटत,
मिलत न बोध अखूटे २ ॥
काम क्रोध मद मत्सर आदिक,
जीव विविध विधि कूटे ॥ ३ ॥
विषय विराग प्रबल पारख जब,
तबहिं ये बन्धन टूटे ॥ ४ ॥
मल विक्षेप आवरण कलिमल,
विविध विकारहिं फूटे ॥ ५ ॥
साधन औ सत्संग विवेक गहि,
मोह फाँस दृढ़ टूटे ॥ ६ ॥

१११. पद

हमारे मन क्यों न भजन में लगै ॥ टेक ॥
बार-बार तोहि देत सिखापन,
पुनि - पुनि जात भगै ।
विषयन को चाहत निशिवासर,
तेहि में मूढ़ पगै ॥ १ ॥
जेहि को कबहु न चाहत उर में,
सोइ सोइ याद जगै ।

जेहि चाहत निशिवासर चिन्तन,
तेहि की न लार लगै ॥ २ ॥
जन्म जन्म का वैरी मन तू,
पापी नीच सगै ।
अब नहिं पीछा तजौं तिहारो,
पकड़ि लगाओं मगै ॥ ३ ॥
सजग वीरता दृष्टि एकरस,
जब वैराग्य जगै ।
तब अभिलाष न तेरी चलिहैं,
आपुहिं भजन मगै ॥ ४ ॥

११२. पद

हमारे मन सद्गुण ग्रहण करो ॥ टेक ॥
सत्य अहिंसा दया शील, अरु ब्रह्मचर्य जबरो ॥१॥
शम दम तोष क्षमा सुखकारी, धीरज सहन बरो ॥२॥
तनमन शुद्धि भक्ति सत्सगत, विरति विवेक भरो ॥३॥
सब अभिलाष त्यागि दृश्यनको, स्थिति परख चरो ॥४॥

११३. पद

भजन बिन नर तन खोय दियो रे ॥ टेक ॥
पशु पक्षी सम जग सुख भोग्यो,
उत्तम तन धरि काह कियो रे ॥१॥
खाय सोय कर उमर बितायो,
नहिं कछु धर्म को बीज बियो रे ॥२॥
धन कुटुम्ब घर में ममता करि,
परमारथ पथ भूल गियो रे ॥३॥

कह अभिलाष विषय में रत ह्वै,
पुनि-पुनि दुखमय जन्म लियो रे ॥४॥

११४. पद

जीवन जात कौन भरोस ॥ टेक ॥
प्रति मिनट नित घटत आयुष,
नीर अँजुलि शोष ॥१॥
मोक्ष साधन योग्य नर तन,
जात पशु तन पोष ॥२॥
पेट भोग में दिन बितावत,
तदपि ज्ञान को जोश ॥३॥
विषय तृष्णा चित्त छीजत,
मिलत नहिं सन्तोष ॥४॥
जानि के क्षण भङ्ग तन,
अभिलाष स्वतः स्वतोष ॥५॥

११५. पद

संसार में रहना नहीं,
संसार ही दुख मूल है।
जो कुल कुटुम्बी मान हितकर,
निरय तामें फूल हैं ॥ टेक ॥
प्रियकर विषय भोगादि नारी,
सुत मिलै तो हर्ष हो।
पर ताहि के नित रक्षिबे में,
कठिन अरु प्रतिकूल है ॥ १ ॥

जिस पुत्र में जिस नारि में,
जिस कुल कुटुम परिवार में।
जो मानता है सुक्ख प्राणी;
सोई भव मग शूल है ॥ २ ॥
सब देखते ही देखते,
क्षण मात्र में नश जायँगे।
जिस जिस की सेखी में पड़ा,
तू नित्य पद को भूल है ॥ ३ ॥
हे भाई ! तेरे कोई नहीं,
संसार के परिवार सब।
नित ही रुलायेंगे तुझे,
जो मानता अनुकूल है ॥ ४ ॥
सब दुक्ख मूलक काम है,
जिससे सकल हो आपदा।
इसका हृदय से त्याग हो,
तो शमन हो सब हूल है ॥ ५ ॥
यदि त्याग कर जग वासना,
सद्बोध में सन्तुष्ट हो।
तो हस्तगत हो शान्त पद,
अब से न भव में झूल है ॥६॥

११६. पद

अमल खोरी बुराई है, तिसे तुम त्याग दो प्यारे।
सन्त सत्संग को कीजे, सदा सद्गुण हृदय धारे ॥टेक

मांस वो मद्य तम्बाकू, वो बीड़ी चर्स गाँजा है।
पड़ी आदत जहाँ जिनकी, जलै दिन रैन चिन्ता रे ॥१
नशा से नाश तन धन हो,लोक परलोक सुख शांती।
कुसंगत में सदा पड़कर, दुखों के भार शिर धारे ॥२
व्यसन दुख जानि के त्यागो, कुसंगत से हटो जल्दी।
मानुष तन लाभ को लेलो, भक्ति सद्धर्म को लारे॥३
अहिंसा शील गुरुभक्ती, सरल सन्तोष सत्संगत।
मनु के हैं यही लक्षण, गहो अभिलाष गुण सारे ॥४

११६. पद

ये चंचल भामिनी भव से, बचेगा शूर कोई है।
वही ज्ञानी चतुर पण्डित, विरागी मुक्त सोई है ॥टेक

वही दुख से निकल सकता,
वही सुखिया रहे हर दिल।
न कामिन फन्द में आया,
सदा निर्बन्ध जोई है ॥ १ ॥

वही है भूप शाहन्शाह,
वही विद्वान से बढ़कर।
हृदय से काम कीचड़ को,
जिन्होंने साफ धोई है ॥ २ ॥

पड़े जो काम के वश में,
लिए ठेका दुखों का वो।
नचे बन्दर समा निशि दिन,
जन्म जन्मान्त रोई है ॥ ३ ॥

है लानत सर्व ज्ञानों पर,

जो भामिन भाव में बूड़े।
तजे निजतन्त्र जीवन को,
सदा दुख बोझ ढोई है ॥ ४ ॥
तजो अभिलाष भव बन्धन,
यदी सुख शान्ति को चाहो।
उठो जागो चलो जल्दी,
यहाँ नहिं मीत कोई है ॥ ५ ॥

११८. पद

विषयों की वासनायें, ये नित रुला रही हैं।
नर-नारि को भ्रमाकर, दुख में फँसा रही है। टेक॥
ये रूप रंग फैशन, ये रस भरी जवानी।
निःसार मल की टट्टी, मन को लुभा रही हैं ॥१॥
घृत अग्नि में जो छोड़े, नहिं अग्नि शान्ति होती।
विषयों के भोग से नहिं, तृष्णा बुझा रही है ॥२॥
ये एक क्षण की क्रीड़ा, देती सदैव पीड़ा।
तिस पर ये मूढ़ मन को, पुनि पुनि भुला रही है ॥३
दुख से चहो जो बचना, विषयों को होगा तजना।
बनि पूर्ण ब्रह्मचारी, संयम सदा गही है ॥४॥
गन्दे शरीर की तू, आसक्ति त्याग करके।
निज रूप राम चेतन, अविचल स्वरूप ही है ॥५॥
अभिलाष होश में आ, बिष सम विषय को तजकर।
निज स्थिति में जागे, दुख-मुक्त तब सही है ॥६॥

११९. पद

बहनों भक्ती में मन को लगाओ जरा।

बहनों सत्संग में प्रेम बढ़ाओ जरा ॥ टेक ॥
मेरी नारी जातियाँ, बहुत पड़ी हैं दूर ।
धर्म भक्ति को त्यागिके, भईं मन्दमति मूढ़ ॥
अपने नर तन को सफल बनाओ जरा ॥ १ ॥
शौक ठाट आलस्य में, देती तन धन खोय ।
सद्गुण सत्संगत नहीं, कैसे सुखिया होय ॥
पिछड़ी जाति को आगे बढ़ाओ जरा ॥ २ ॥
खटमल जूँ चीलर सभी, बिच्छू सर्प जो होय ॥
जीव जन्तु छोटे बड़े, मत मारो इन कोय ।
मन में शील व दया टिकाओ जरा ॥ ३ ॥
जल घी आँटा छानि के, चावल दाल विचार ।
कबहूँ हिंसा हो नहीं, ऐसे मन में धार ॥
नित्य भोजन को ऐसे बनाओ जरा ॥ ४ ॥
भूखा नंगा भिक्षु जो, द्वारे आवे कोय ।
यथा शक्ति तेहि तृप्ति करि, सबहिं रक्षिये सोय ॥
अपने धन को धरम में लगाओ जरा ॥ ५ ॥
निन्दा ईर्षा मान छल, कबहुँ न मन में लाव ।
चोरी जारी झूठ जो, दिल से दूरि बहाव ॥
अपने अवगुण को आप हटाओ जरा ॥ ६ ॥
जन्म मरण का मूल है, विषय भोग प्रसंग ।
ताहि त्यागि गुरु भक्ति धरु, ब्रह्मचर्य सत्संग ॥
अपने मन को विषय से हटाओ जरा ॥ ७ ॥
पति पुत्री सुत मातु पितु, घर तन धन छुटि जाय ।
पाप पुण्य जो कुछ करो, सोई साथे जाय ।

इससे आगम को अपने बनाओ जरा ॥ ८ ॥
दया क्षमा सत् शील जो, भक्ति विवेक विचार।
सब जीवन से प्रेम करि, मानुष जन्म सुधार ॥
ऐसे सद्गुण को मन में, बसाओ जरा ॥ ९ ॥
पाठ करो सद्ग्रन्थ का, नित्य करो सत्संग।
कुकरम पाँव न दीजिये, सदा चलो सद्पन्थ ॥
ऐसे अभिलाष अपना बढ़ाओ जरा ॥ १० ॥

१२०. पद

माता बहनों मेरी मान लीजै कहन,
अपनी बिगड़ी सुधारो रहन आचरन ॥टेक॥
मात पितु सासु सासुर पती जेठ जो,
इनसे राखो अदब शील संकोचपन।
नम्रता भाव राखो सदा चित्त में,
त्यागि कटुता सरल मीठ बोलो वचन ॥१
कर्म व्यभिचार का फल नर्कवास है,
जानि ऐसा कभी भी न होवे पतन।
अपने पति के अलावा पुरुष हैं जिते,
भाई सुत को पिता सम तिन्हें जान मन।
वस्त्र आभूषणों के लिये द्रोह कर,
पति को दीजे नहीं दुःख कहि कटु वचन।
मन में सन्तोष राखो कलह त्यागकर,
नित यथा प्राप्त में आप रहिये मगन ॥३
पति के दुख में दुखी हो सुखोंमें सुखी,
मन से बहु भोग का त्याग दो लोभपन।

सूमपन अलगिया व्यर्थ के खर्च को,
त्यागि सन्तोष धारो सरल आचरन ॥४

देव देवी तथा भूत मत पूजिये,
पुत्र के वास्ते ये है केवल बहम।
जो लिखा कर्म में बस वही होयगा,
शिर पटकना जड़ों में है नादानपन ॥५

पुत्र पुत्री पशू पक्षी को भी मिले,
लाभ नरतन का सत्संग भक्ती भजन।
पुत्र धन छूट जाये अवश्य एक दिन,
धर्म ही पुत्र सच्चा है मानो वचन ॥६

मांस मदिरा वो दोहरा तमाकू तथा,
बीड़ी सिगरेट जितने ग्रहन दुर्व्यसन।
त्याग दो सर्वथा ये बड़े दुःखदा,
शान्ति पाओगी छूटे हरज खर्चपन ॥७

शक्ति भर जान में जीव हिंसा न कर,
मन में दया रखो जितने हैं प्राणिजन।
छान कर जल पियो नित्य शुद्धी रखो,
वस्त्र बर्तन वो तन मन वचन धन सदन ॥८

चुगली निन्दा वो हिंसका पटैती कलह,
राग ईर्षा असत त्याग दो दुर्वचन।
प्रेम समता परस्पर में निःस्वार्थ रख,
भाव सेवा जरूरी है सबको ग्रहन ॥ ९

दान भिक्षुक को दो भक्ति-सत्संग करो,
सत्य सद्ग्रन्थ का नित्य कीजै मनन।

लाभ नर तन का अभिलाष कल्याण है,
प्राप्त करलो हृदय से मदन कर कदन ॥१०

१२१. पद

पायो मानुष तन अलबेला, करलो सन्त समागम मेला।
बेला ऐसो ना मिलेंगे तोको भाय ॥ टेक ॥
नर तन उत्तम मुक्ति द्वार को पायो करन भजनियाँ।
देखि के भुलाय गयो मस्ती जवनियाँ ॥
यह सुनराई यह छैल चिकनियाँ।
नाहीं रहे रोज उतरि जाय पनियाँ ॥
थोरी है उजेली फिर अँधेरी रैनियाँ।
पानी के फेनाव जैसे तैसे जिनगनियाँ ॥
केहि के भरोसे तुम करलो गुमनियाँ।
नारी सुत घर धन कुटुम जहनियाँ ॥
चलती समय तेरो होयँगे बिरनियाँ।
सब अभिमान होयँगे तब धुनियाँ ॥
भैया देखो आँख उघारी, अबहीं करलो खबरदारी।
सारी माया मिलेगी तेरी धूल ॥ १ ॥
चोरी हिंसा व्यभिचारी तुम त्यागो निज तन से।
गाली निन्दा झूठ कटुक चुगुली त्यागो वचन से ॥
ईर्षा क्रोध मान छल, दुर्गुण तजदो अपने मन से।
ममता बैर कपट कुटिलाई त्यागो सब जन से ॥
पर उपकार सन्त की सेवा कीजे तन धन से।
तजो कुसंग सदा दुखदाई करो सुसंग सुजन से।
गाँजा भाँग तम्बाकू बीड़ी अपनी हानि व्यसन से ॥

याते सभी अमल को त्यागो निर्मल रहो अमन से।
दया विचार शील सत श्रद्धा प्रेम भक्ति गहु मन से॥
मानुष तन को लाभ मोक्ष है करलो भक्ति भजन से।
औसर खूब मिला है भाई, करलो अपनी भली कमाई।
नाहीं पछितइहौ परदेश॥ २॥
धन सुत नारी घर कुटुम्ब से होयगी बिदाई।
जेहि काया में ऐंठा घूमे वहौ संग नहि जाई॥
यक दिन प्राण निकल जायेंगे सब अभिमान भुलाई।
जैसी किये भरोगे वैसी पुनर्जन्म में जाई॥
कर्म कथा यह सत्य-सत्य है यामें झूठ न राई।
पाप गठरिया मत बाँधो जीवन है थोरा भाई॥
खाने वाले कुल कुटुम्ब हैं पाप न कोई बटाई।
पाप का बदला दुख पाओगे रोये नाहि सिराई॥
आज कै वोहदा· विद्या प्रभुता करै न कोईं सहाई।
याते पहिले सावधान हो करो न पाप-बुराई॥
साधन धाम मोक्ष कै द्वारा नर तन सन्तन गाई।
भक्ति भजन सतसंगत करके करलो अपन कमाई॥
औसर बार-बार नहि आवै, चूके अन्तसमय पछितावै।
करलो अपनो जनम निस्तार॥ ३॥

१२२. पद

सुन नाउत भइया! भूत कहाँ से निसैंया॥ टेक॥
चारि खानि चौरासी जीवन, निज निज कर्म भोगैया
भूत योनि कहुँ दीखत नाहीं, दुख को कौन देवैया॥१

देह छोड़िके देहैं धरिया, भत कौन ठहरैया।
मिथ्या कल्पित भूत तुम्हारा, चेत करो जन रैया ॥२
माटी के करि देवी देवा, मूड़ काटि के देइया।
निर्जिव आगे सर्जिव देवे, लोचन कछु न सूझैया ॥३
साँच देव को मानत नाहीं, झूठें मानि भुलैया।
चेतन देव सत्य हैं भाई, सब घट चेत करैया ॥४
मूड़ काटि के मूड हिलायो, देवी खुशी कहैया।
नित जिभ्या के स्वाद विवश तू, झूठे झूठ बकैया ॥५
छाड़ि देव तुम देवी देवा, छाड़ि देव चतुरैया।
'दास सन्तोष' दया गहु प्यारे, मानुष देह धरैया ॥६

१२३. पद

नहिं भूत-प्रेत की खानि कोई,
मानव भाई क्यों भूले हो ॥ टेक ॥
यदि भूत-प्रेत जग में होते,
तो क्यों न देखने में आते।
यह मन की एक भावना है,
अपने अज्ञान में शूले हो ॥१॥
नाउत ओझा बैगा सोखा,
इनके जालों में फंसो नहीं।
भ्रम भूत को दिल से दो खदेड़,
क्यों भ्रम में पड़कर भूले हो ॥२॥
बकरी मुर्गी सूअर भेड़ा,
जिन जीवों को तूने मारा।

उनका बदला देना होगा
क्यों माया में तुम फूले हो ॥३॥
नहिं भूत - प्रेत जग में होते,
जो भूत मानते भूत सोई ।
तजि भूत-भरम गुरु-भक्ति करो,
अभिलाष तभी सुख मूले हो ॥४॥

१२४. पद

बिना सद् आचरण धारे,
न कथनी काम आती हैं ।
ये तन मन इन्द्रियाँ चचल,
सदा नर को नचाती हैं ॥ टेक ॥
स्ववश तन मन वचन करना,
नहीं कुछ साग मूली है ।
अधमता अपने मन की ये,
सदा भव में पचाती हैं ॥ १ ॥
स्वाभाविक दूसरे के दोष को,
मन देखता निशिदिन ।
हजारों भूल जो अपनी,
नहीं वे दृष्टि आती हैं ॥ २ ॥
बड़ा बनना गुरू बनना,
सरल विद्वान भी बनना ।
मगर मन की कुचालें जो,
न जल्दी जीत जाती हैं ॥ ३ ॥

बिना निश्चय लगन उत्साह,
श्रद्धा भाव के आये।
ये साधन हीन साधक को,
विषय भव में गिराती हैं ॥४॥

यदी सुख चाहते अविचल
तो निज तन मन वचन वशकर।
लखे अभिलाष निज दुर्गुण,
तभी मन शान्ति आती है ॥५॥

तृतीय बोध खण्ड
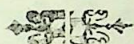
१२५. पद

हृदय से जगत को नहीं चाहता हूँ,
हमारी जगत को ये अन्तिम बिदाई ।।टेक।।
जगत जलन में वास करि, जीने की क्या आश ।
मरने को फिर भय कहाँ ? अभय परख पद वास ।।
न जीना जगत में न मरना मुझे है,
अचल शान्ति पारख परख में समाई ।।१।।
मान बड़ाई विषय सुख, मृग तृष्णा को राज ।
अहो ! हाय हा ! सबहि से, थकित भयों मैं आज ।।
नहीं और दीखे हमारे नजर में,
परम बोध पारख अटल मन बसाई ।।२।।
प्राप्त करन नहि कछु रह्यो, नहि बाकी कर्तव्य ।
यहि संसार असार हित, नहीं और मन्तव्य ।।
जगत स्वप्न से ना कोई वास्ता है,
परख धीर हो देह बुद्धी मिटाई ।।३।।
मन वाणी कर्तव्य वो, नहि प्रमाणु को गम्य ।
अविनाशी अविकार अज, शान्त परम पद रम्य ।।
हुआ पूर अभिलाष जो चाहते थे,
सदा के लिए अब अभय देश पाई ।।४।।

१२६. पद

यदी मुक्ति दिल से सही चाहते हो,
तो संसार से मन हटाना पड़ेगा ॥टेक॥
सुखासा अहन्ता हृदय से मिटाकर,
गुरू भक्ति में मन लगाना पड़ेगा ॥ १ ॥
रहे आज तक तू गुरू से विमुख हो,
मगर मन गुरू को चढ़ाना पड़ेगा ॥ २ ॥
अनेकों विषय की लगी वासना जो,
उसे तोड़ कर थिर कराना पड़ेगा ॥ ३ ॥
हृदय राग वो द्वेष इर्ष्या जलन को,
वो चंचल चपल सब जलाना पड़ेगा ॥ ४ ॥
सदा दृष्टि पारख प्रबल एक धारा,
सजग बीरताई लहाना पड़ेगा ॥ ५ ॥
अमर स्थिती नित्य अभिलाष होवे,
कभी देह में फिर न आना पड़ेगा ॥ ६ ॥

१२७. पद

रहें हम स्वतः आप में आप ही थिर।
यही अब हमारा हृदय चाहता है ॥टेक॥
न कोई भी छेड़े हमें आय कर के।
यही अब हमारा हृदय चाहता है ॥ १ ॥
जगत भोग तन मन है हमसे पृथक् ही।
न फिर से मिलन को हृदय चाहता है ॥२॥
असंगी अकामी अकेला स्वयम् हूँ।
रहूँ नित्य ऐसे हृदय चाहता है ॥ ३ ॥

सकल कष्ट औ शोक दुख रूप तन में।
पुनः अब न आऊँ हृदय चाहता है ॥ ४ ॥
सुखासक्ति वश ही बंधे तत्व में हम।
छुटे ग्रन्थि चिज्जड़ हृदय चाहता है ॥५॥
दुखालय जगत का पुनः हो न दर्शन।
यही अब हमारा हृदय चाहता है ॥ ६ ॥

१२८. पद

सदा भक्ति वैराग्य सद्बोध में थिर,
हृदय की अनादि अविद्या मिटा दे ॥टेक॥
मृतक दुख क्षण भंग अपवित्र तन से,
हटा प्रेम निज रूप में तू लगा ले ॥१॥
अमर नित्य निर्द्वन्द्व अविकार पद में,
रहे नित्य लवलीन जग को भुला दे ॥२॥
परम चातुरी है यही एक निज को,
तू आवागमन के दु:खों से बचाले ॥३॥
ये दो दिन के जीवन स्वपन में न भूले,
जो है खास तेरा उसी को सम्हाले ॥४॥
सकल दृश्य से मैं हूँ द्रष्टा निराला,
ये अभिलाष अपने हृदय में बसाले ॥५॥

१२९. पद

हमारे लिए तो हमीं ही बहुत हैं,
हमारे लिए न अब कुछ चाहना है ॥टेक॥
जग इन्द्री सम्मुख पड़ो, याते होत प्रतीत।
नहीं जगत को काम क्या ? मैं चैतन्य अभीत ॥

हृदय से हमारे जगत अब नहीं है,
किसी भोग की अब न कुछ कामना है ॥१॥
भोग मान सब कुछ मिले, तो भी लाभ न मोर।
हानि न होवे ना मिले, यह निश्चय दृढ़ जोर॥
जगत दृश्य आये गये मैं रहा थिर,
परम पद को पाये न कुछ पावना है ॥२॥
जगत मिले दुख ही मिले, सुख शान्ती नहिं रंच।
याते सब से मोड़ि मुख, ले पारख में संच॥
हुए चक्रवर्ती बनें भिक्षु क्यों हम,
स्वयं त्याग करके न कुछ भावना है ॥३॥
ज्ञान वर्ण अमृत स्वतः, मुक्त तृप्त निरधार।
अविचल शान्त स्वरूप मम, मन माया गो पार॥
अटल राज्य पाये न अभिलाष बाकी,
जगत जाल में अब न फिर आवना है ॥४॥

१३०. पद

जिसे मन समाया अमर स्थिती में,
रिझाओगे उसको भला काह देकर ॥टेक॥
जहाँ न आशा चाहना, सकल भावना अन्त।
सपन जगत तन मन निरखि, तोड़ि बासना तन्त॥
जिसे विश्व सारा निरस हो गया है,
रिझाओगे उसको भला काह देकर ॥१॥
अमर शान्ति अविकार पद, मन वाणी के पार।
ताहि वास आठो पहर, तन जड़ ग्रन्थि निवार॥

सकल कामनाएँ जहाँ पूर ही हैं
पुराओगे उसको भला काह देकर ॥२॥
भोग मात्र प्रारब्ध जेहि, शेष कर्म नहि और ।
देह रहे या नाश हो, पृथक् परम पद ठौर ॥
टूटी मोह ग्रन्थी गया रूठ जग से,
मनाओगे उसको भला काह देकर ॥३॥
जिन्हें और नहि भावना, हर क्षण शान्त स्वरूप ।
तेहि की गति सोई जानिहैं, जे होइहैं तदरूप ॥
हुए मुक्त भव से न अभिलाष इच्छा,
बुलाओगे उसको भला काह देकर ॥४॥

१३१. पद

वही चाहता हूँ जहाँ है न कोई,
सदा के लिये बस हमी ही हमी हैं ॥टेक ।
सकल दृश्य संसार नहि जल थल पावक पौन ।
मिलन वियोगी दुख नहि, नहि आवन नहि गौन ॥
नहि राग वो द्वेष मन वश जगत है,
नहीं मान अपमान कोई कमी है ॥१।
दुखद स्वरूपी देह नहि, नहि मानसिक ताप ।
जानि जनावन से रहित, सदा अकेले आप ॥
न दैहिक न दैविक न भौतिक जलन है,
नहीं हर्ष विसमय न कोई कमी है ॥२॥
अमर असंगी अचल पद, निर्विकार निर्भीत ।
तन मन जगत उपाधि गत, जन्म मरण दुख तीत ॥

अगम शान्ति सागर अनोखा परम पद,
सकल कामना पूर आपी अमी है ॥३॥
देह गेह धन क्षणिक सब, जन पंथी संसार।
कोइ काहू का है नहीं, मतलब के सब यार।
उदासीन होकर जगत् देह मन से,
मिले मुक्ति अभिलाष मन में रमी है ॥४॥

१३२. पद

सदा मुक्ति का सुख जिसके,
हृदय अन्तर जँचा होगा।
विषय संसार तन मन जन,
सभी फीका रँचा होगा ॥टेक॥
न भाती रूप सुन्दरता,
न भाती कामिनी कंचन।
छुड़ाकर पिण्ड दुनिये से,
निराशी मन बचा होगा ॥ १ ॥
न दर्शन हो पुनः जग का,
न फिर से देह में आऊं।
न फिर फिर हो मिलन बिछुड़न,
यही दिल में मचा होगा ॥ २ ॥
सहा सन्ताप बहु तेरा,
न फिर से और हो सहना।
पियारे प्रेम निज पद की तरफ
हरदम खिचा होगा ॥ ३ ॥

प्रबल अभिलाष मुक्ती का,
मजा वैराग्य का तब है।
कहे निज शान्ति सुख किसपे,
वो खुद ही जानता होगा ॥ ४ ॥

१३३. पद

हमें हो स्थिती प्यारी, जगत रूठे तो रूठन दो।
तजें हम सर्व की आशा, प्रेम टूटे तो टूटन दो ॥टेक॥

नहीं जग में कोई बैरी,
न प्रेमी खासकर मेरा।
रखें हम ध्येय निशिवासर,
जगत कूटे तो कूटन दो ॥ १ ॥

बाग जागीर म5 मन्दिर,
या कोई खासकर वस्तू।
रहें हम थीर निज पद में,
कोई लूटे तो लूटन दो ॥ २ ॥

पुजापा मान प्रभुता की,
न रंचक हो निगा दिलमें।
सगे सम्बन्ध प्रेमी जन,
सभी छूटें तो छूटन दो ॥ ३ ॥

प्रबल दुख दृष्टि तन मन की,
यही अभ्यास अन्तरगत।
चले दिन रैन इक धारा,
सुखासा तन्तु टूटन दो ॥ ४ ॥

छुटे भव-दुख मिले मुक्ती,
यही अभिलाष तुम रक्खो।
जगत स्नेह सुख दृष्टी,
कभी दिल में न जूटन दो॥५॥

१३४. पद

भला! वह कब सुदिन होगा,
कि अपना राज देखेंगे?।
बिनश्वर जान भोगों को,
सदा आभाव पेखेंगे॥ टेक॥
न होगी पर्श की इच्छा, न रस रूपों की आसक्ती।
पंच शब्दादि विषयों का, न उर में सुक्ख लेखेंगे॥१॥
नहीं धन द्रव्य की ख्वाहिश, नहीं राज्यादि भोगोंकी।
न होयेंगे किसी के हम, हमारे भी न होयेंगे॥२॥
न होगी आस मर्यादा, प्रतिष्ठा वो पुजाने की।
न अन्दर मान होयेगा, सभी दुखमय परेखेंगे॥३॥
सुखासक्ती निकलकरके, पूर्ण दुख दृष्टि जब होगी।
जगत सुख भावना उर में, हलाहल सम निरेखेंगे॥४॥
गिना करके कहूँ कबतक, न होगी आस रंचक जब।
अचल पारख स्वस्थिति में, जगत व्योहार छूटेंगे॥५॥
दास अभिलाष की पूरी तमन्ना, होगी कब गुरुवर।
न सम्मुख सृष्टि होयेगी, जगत रफ्तार टूटेंगे॥६॥

१३५. पद

परम निज रूप चेतन को,

सदा यदि प्रेम से ध्यावें।
तो इस जन्मादि संकट से,
सदा हित मुक्त हो जावें॥ टेक॥

जो मालुम हो रहा ये मन,
न हरगिज जायगा जीता।
सो अपने दिव्य पारख से,
उसे भी पार पा जावें॥ १॥

जो हर क्षण है कमी मुझको,
सताती सर्व बातों में।
कमी सो दूर हो करके,
निरिच्छा शान्ति को पावें॥२॥

सर्व सुख शान्ति स्थिरता,
जो है दिल चाहता अपना।
सो थिरता आप के पद का,
सदा ही दास बन जावे॥ ३॥

कहाँ तक के कहूँ भाई,
तौल अभ्यास करके लो।
तो फिर स्वच्छन्द बन्धन से,
सदा निर्बन्ध हो जावें॥ ४॥

मिटै पीड़ा मनः कल्पित,
बुझै त्रय ताप की ज्वाला।
अचल अभिलाष पद पाकर,
सकल दुख द्वन्द्व नश जावें॥ ५॥

१३६. पद

शरीरासक्ति को जीते, वही है वीर वीरों में।
तजे सुख आश कादरपन, वही है धीर धीरों में ॥टेक
न मन के वश कभी होता, न इन्द्री स्वाद में भूले।
न हीले क्षण भी चंचल हो,काम दम्पति समीरों में ॥१
रगड़ के मानसिक दल को, बिराजे तक्त शाहंशाह।
डटे पुरुषार्थ में अपने, लगा अग्नी नसीरो१ में ॥२
पगा जो रन दिन अमृत, स्वरूपी नित्य पारख में।
किया स्नेह सब गारद, न आशा धन जगीरों में ॥३
लिया है अन्त की कफनी, मरा संसार भोगों से।
उदासी छा रही हरदम, वही फक्कर फकीरों में ॥४
मिटा भव बन्ध अब उनका, न दिलमें वासना बाकी।
हुए अभिलाष वे सुखिया, न कोई है नजीरों में ॥५

१३७. पद

हमारा रूप अविनाशी,
जगत द्वन्द्वों से न्यारा है।
अचल अविकार अमृत पद,
परम निश्चिन्त प्यारा है ॥ टेक ॥
नहीं है तत्व परकिरती,
न दुखमय सृष्टि जड़ चंचल।
न सूरज चन्द्र जल थल है,

१—नसीब, भाग्य, प्रारब्ध।

पवन पावक न तारा है॥
मिलन बिछुड़न गहन त्यागन,
न तन मन के सकल अनबन।
न जागृत स्वप्न सुषुप्ति है,
न यह संसार सारा है॥ २॥
मनः कल्पित सकल मन भव,
जगत तन मन सुसुप्ती वत।
मिला भी क्या छुटा भी क्या,
स्वयं नित प्राप्त प्यारा है॥ ३॥
जलन संसार तन मन की,
उपाधी स्वप्न की कौहट।
न इनकी गति मेरे में है,
न इनमें गति हमारा है॥ ४॥
सकल हैं शत्रु जड़ सृष्टी,
चित्त तू! सब से फट जावे।
लीन अभिलाष हो निज में,
जगत भव सिन्धु पारा है॥ ५॥

१३८. पद

दृश्य से पार तू, नित निराधार तू, जीव सारा।
सत्य पारख का करलो विचारा॥ टेक॥
देह को है तू निज रूप माना,
याते विषयों में फिरता दिवाना।
यह ही अज्ञान है, दुःख की खान है, भव की धारा,
दृश्य से तू न निज को हिगारा॥दृश्य०॥१॥

निज को जग का उपादान माना,
जड़ वो चैतन्य एकी में साना।
सत्य से दूर तू, जग में भरपूर तू, बोझ धारा,
बनके व्यापक तू निज को बिगारा ॥दृश्य०। २॥
सत्य चिद् शान्त निर्मल अनाशी,
नित्य निर्द्वन्द्व पारख प्रकाशी।
राग से दुःख सहा, नित्य भव में बहा, न सम्हारा,
स्वप्न के शत्रु ने तुमको मारा ॥दृश्य० ।३॥
जड़ वो चैतन्य दो वस्तु न्यारे,
स्व-स्व हैं भिन्न चैतन्य सारे।
दृश्य जड़ त्यागकर, निज में अनुराग कर, पाप छारा,
नित्य अभिलाष निज रूप प्यारा ॥ दृश्य०॥४॥

१३९. पद

सच्चिद् शान्त तू अविकार ॥ टेक ॥
नहिं कभी उत्पत्ति तेरो, ना विनाशनहार।
आदि अन्त विहीन, सत्य स्वरूप नित निरधार ॥१॥
ज्ञान मात्र स्वरूप तेरो, हृदय परखन हार।
जीव द्रष्टा हंस चेतन, विविध नाम पुकार ॥२॥
क्लेश अरु आनन्द सुख-दुःख हर्ष-शोक विकार।
लेश मात्र न द्वन्द्व तुझ में, शान्त दिव्य अपार ॥३॥
काम क्रोध अरू लोभ मोह, वो भय कपट हंकार।
सब विकार विहीन तू, अभिलाष शुद्ध सम्हार ॥४॥

१४०. पद

मन ! करु चितवन निज रूप ॥ टेक ॥

अज अमर अविकार अविचल,
अनघ अजर अनूप ॥१॥
अति अद्वन्द्व अचिन्त अच्युत्,
अमल अविरत भूप ॥२॥
सार सत सन्तुष्ट सागर,
शुद्ध शान्त स्वरूप ॥३॥
साधु संग सद्ग्रन्थ साधन,
साधि सम्यक् रूप ॥४॥
आप में अभिलाष स्थिर,
होहु अविकल रूप ॥५॥

१४१. पद

तू अविनाशी अविचल रूप ॥ टेक ॥
तन मन जगत द्वन्द्व से न्यारे,
तू अविकार स्वरूप ।
दृश्य मनोमय को दलि मलि के,
ठहर स्वच्छ निज रूप ॥ १ ॥
है प्रारब्ध अज्ञान विवश तन,
तेहि में सजग सद्रूप ।
होनहार सोई तन होवे,
बरतत स्वप्न स्वरूप ॥२॥
तू केवल निज वृत्ति निजहिं में
करि निज प्रेम स्वरूप ।
सब दुख द्वन्द्व मूल से नाशे,
मुक्ति विदेह अनूप ॥३॥

मिलन वियोग स्वप्न की सृष्टी,
सबही भास दुरूप।
तजि चितवन अचिन्त अचल निज,
ठहरि परख पद भूप ॥४॥

१४२. पद

कब धौं होइहौं निर्द्वन्द्व ॥टेक॥

दुःख सुख अपमान मान न, शोक हूँ न अनन्द।
जन्म ना पुनि मरण हूँ नहिं विगत तन मन फन्द ॥१
अनल अनिल अकास जल थल, दृश्य वर्ग न गन्द।
सकल शूल समान चिन्तन, चित्त को नहिं सन्द ॥२
भूख प्यास न शीत आतप, त्रिविधि ताप न धन्द।
भूल भ्रम लज्जा घृणा नहिं, विविध मन कृत मन्द ॥३
जानि अपर जनाइबो, मिलिबो बिछुड़बो द्वन्द्व।
सर्व से अभिलाष नीवृत, आप आप स्वछन्द ॥४

१४३. पद

अब नहिं चाहिये कछु और ॥ टेक ॥

धाम धन धरणी धवल, धामिन सकल सुख सौरि।
तरुण तन तनुजा तनय, तामिस्र अन्तक कौरि ॥१॥
रज्जु अहि भासत धरणि, जल पाइ किरण तमोरि।
पंच विषय पयूष त्यूँ, पाये अविद्या घोरि ॥२॥
विमल दृष्टि उघारि गुरु, दीन्ह्यो परम पद पौरि।
सर्व को साक्षी सर्व पर, परख पारख ठौरि ॥३

जग सुषुप्ति समान निज से, दूरि कोस करोरि।
पूर्ण काम असंग अविचल, रूप सच्चिद् मोरि ॥४

सर्व भाँति अघाई जग से, नाथ! शरण तोरि।
चहत तव अभिलाष दाया, देहु बन्धन छोरि ॥५

चतुर्थ सामूहिक खण्ड

१४४. पद

हे सद्गुरू सद्ज्ञान बोध दान देवैया
भव धार पार कर दो हमारी पड़ी नैया ।।टेक।।
टूटी पुरानि नाव कामनायें जल भरे ।
तृष्णा तरंग जोर पार होउँ किस तरे ।।
नहिं सूझता उपाय नाथ आपि खेवैया ।। १ ।।
मद काम क्रोध लोभ मोह जन्तु जल बड़े ।
वो राग-द्वेष दो पिशाच सामने खड़े ।।
विष वायु जोर तोर बोर नाव बहैया ।। २ ।।
रोते सुसुकते दिन हमारे आज तक गये ।
संसार सिन्धु में नहीं साथी कोई भये ।।
सब भँवर मोह में डुबाय प्राण हरैया ।। ३ ।।
सद्गुरु तुम्हारा नाम कई बार सुने थे ।।
पे मोह की पट्टी से मेरे आँख मुदे थे ।।
देकर दरश जुड़ाये मोह ताप नशैया ।। ४ ।।
हे दीनबन्धु दयासिन्धु चित उदार हो ।
मम दीन खीन भक्ति हीन के अधार हो ।।
सब भाँति से रक्षक हमारे आप रहैया ।। ५ ।।
उपकार न भूलूँ तेरा सद्गुरु किसी तरे ।
ऐसी सुबुद्धि ज्ञान हिए में भरो मेरे ।।
बस आप ही संसार सिन्धु पार लगैया ।। ६ ।।

जय जय हमारे देव जी सूरत दयाल हो।
अब बाँह पकड़ खींच लो अभिलाष बाल को॥
भव सिन्धु के मल्लाह नाव पार करैया॥ ७॥

१४५. पद

करके दया दयाल चरण शरण लगाओ।
पापी मलीन जान के अब से न हटाओ॥टेक॥
तेरी शरण रहित अनादि से दुखी रहा।
करता विचार क्षण न जगत में सुखी रहा॥
अब मेरे दीन हीन पे इक दृष्टि तो लाओ॥ १॥
अब तक बना गुलाम बाम जर जमीन का।
पापों से हमारा रहा अन्तः मलीन सा॥
अब सर्व गुलामी छुड़ा के दास बनाओ॥ २॥
तेरे महान ज्ञान से दृष्टी उघर गई।
तृष्णाकि प्रबल अग्नि में वृष्टी सुधा भई॥
बस नित्य वही शांति मेरे मन में बसाओ॥ ३॥
दिल भी दुखी नैनों से आसुयें ढलक रहे।
तेरे चरण निहारते मानो पलक रहे॥
हे नाथ! हमें मोह की अग्नी से बचाओ॥ ४॥
मेरे हृदय के पाप ताप आप जानते।
इससे न बने आप से गुरुवर बखानते॥
लागी हुई सनेह की डोरी न छुड़ाओ॥ ५॥
एकी अधार आपका सूरत दयाल है।
माता-पिता अधार यथा दीन बाल है।
मेरे अनाथ भिक्षु का अभिलाष पुराओ॥ ६॥

१४६. पद

जीवन अधार नाथ तुम्हीं एक सहारे।
भव दुख के छुड़ैया हमारे प्राण पियारे ॥टेक॥
मरते जन्मते आज लों मेरे समय गये।
सुख चाहत पे दुख रहे घेरे नये नये॥
तिन मोह-शोक-रोग दुसह दुख से उबारे ॥ १ ॥
आसक्ति मोह धार में किस्ती मेरी रही।
लगती कहाँ पे जाय ठिकाना नहीं कहीं॥
बहती हमारी नाव किधे खेय किनारे ॥ २ ॥
कंचन वो कामिनी शरीर सम्पति छुटे।
पे आपका सद्‌बोध अमर वस्तु ना लुटे ॥
स्वारथ के सगे मात-पिता बन्धु हमारे ॥ ३ ॥
जग दुख से आज सद्गुरू मुझको बचाइये।
सूरत स्वतः स्वरूप में वृत्ती डटाइये॥
अभिलाष के हो सत्य आप एक अधारे ॥ ४ ॥

१४७. पद

प्रभु तेरे सिवा कौन है इस जग में सहारा।
अब देख लिया जान लिया सब हैं परारा ॥टेक॥
माता-पितादि जो रहे विष पाठ पढ़ाये।
जिस ताप में जलते रहे पुनि बाँधि गिराये।
जो बाम काम भा रहा सो भी हुआ आरा ॥१॥
जिस मित्र बन्धु साथ में गुलजार कर रहे।
पर हाय वे भि यार बने बार कर रहे॥
स्वारथ अपूर देखि के सो भी हुए न्यारा ॥२॥

कोई मुझे बतावे ईश परे दूर है।
कोई भी कहे जक्त में वो ब्रह्म पूर है॥
कोई तो काष्ठ धातु में ईश्वर को निहारा॥३॥
भूले हुए जो मग में मिले सबहीं भुलाये।
विकराल मोह रक्त के आँसू से रुलाये॥
अज्ञान मोह रैन में सूझे न पसारा॥४॥
जब तक न हुआ दर्श आपका बने-बने।
तब तक बेहाल काल गाल में रहे सने॥
बहते हुए को यान मिले कीन्ह किनारा॥५॥
अब स्वच्छ ज्ञान आपका गुरुदेव जी मिला।
दिलपे हमारे टल गयी आसक्ति की शिला॥
प्रकाश दिव्य ज्योति विमल ज्ञान उजारा॥६॥
सच्चे सुमीत प्रीत आपपे बनी रहे।
सद्ज्ञान दान आपका अभिलाष ये चहे॥
फिर घूम के अब से न बहूँ मोह की धारा॥७॥

१४८. पद

आरत है दीन-दुखिया आ करके पुकारा।
अब लीजिए शरण में मेरा कौन अधारा॥टेक॥
किस किस को कहूँ हाय कोई यार नहीं है।
जो यार अपाना रहा दीदार नहीं है॥
सो आप आप भूल के जग में फिरूँ मारा॥१॥
बहु भोग रोग शोग में बीरान हुआ हूँ।
तन मन के झकोरों से मैं हैरान हुआ हूँ॥
कुछ भक्ति ज्ञान दान दो निज पद का सहारा॥२॥

खोजा सभी संसार न कोई दयाल है।
भव मग के सुझैया सभी विकराल काल हैं।
तू ही दयाल सद्गुरू नैनों से निहारा ॥ ३ ॥
तेरा अधार छोड़ के जाऊँ भला कहाँ।
नहिं ठौर ठिकाना मिला गया जहाँ जहाँ ॥
क्या और खास कर मेरा कोई है सहारा ॥ ४ ॥
जो ध्यान करोगे मेरे अवगुण अपार पर।
निस्तार नहीं हो सके अभिलाष बाल कर ॥
अवगुण बिसार पार नाव कर दो हमारा ॥ ५ ॥

१४६. पद

जय दीन बन्धु सन्त गुरू शरण तुम्हारे।
लीजे बचाय नाथ दीन बाल पुकारे ॥ टेक ॥
संसार मोह धार में किस्ती डबक रही।
पतवार कर्णधार सहारा नहीं कोई ॥
पे देख आपको हुई उम्मीद हमारे ॥ १ ॥
सपना के वृथा मोह में हैरान हुए थे।
तृष्णा के भोग वन में लबेजान हुए थे ॥
पे शमन हुई ताप जभी आप निहारे ॥ २ ॥
दुनियाँ हमारे वास्ते मानो उजड़ गई।
बस एक सहारा प्रभूजी आपकी भयो ॥
भ्राता वो मित्र बन्धु सखा आप हमारे ॥ ३ ॥
अभिलाष तिहारे हि सहारे पे खड़ा है।
कीजे दयाल दृष्टि यान बीच पड़ा है ॥
हो कर्णधार नाथ नाव कीजे किनारे ॥ ४ ॥

१५०. पद

दुख का प्रबल प्रवाह जगत के मझार है।
तिससे बचाओ सद्गुरु तेरा अधार है॥ टेक॥
फिर फिर लखा संसार दुखों से तरस रहा।
बिष भोग बादलों से मेह दुख बरस रहा॥
छोटे बड़े पड़े सभी तृष्णा अजार है॥ १॥
यों खेल खाल बाल्य काल को गवाँ दिया।
ज्वानी में काम छन्द फन्द का भया किया॥
हा फिर न चेतता ये मूढ़ मन गँवार है॥ २॥
राजा वो रंक भोग हेतु दीन बने हैं।
विद्वान अविद्वान चाह कीच सने हैं॥
बस और और भोग शीश पे सवार है॥ ३॥
ऐसे अनादि से हि ठोकरें रहे सहे।
तेरी शरण में नाथ आ गये बहे बहे॥
लीजे बचाय सद्गुरू अन्तिम पुकार है॥ ४॥
अभिलाष को है आश आप के अधार की।
कीजे दयालु दृष्टि दया की सुधार की॥
अब भोग रोग से करो मेरा किनार है॥ ५॥

१५१. पद

बढ़े चलो बढ़े चलो मोक्ष मारगी।
जल्दी उठो मारग चलो सद्गुरु पुकार की॥टेक॥
मन शत्रु से कायर बने क्यों दूर पड़े हो।
निज मोक्ष ध्येय छोड़ के कुपंथ खड़े हो॥
क्यों सो रहे जागो तो जरा ख्याल करो जी॥ १॥

क्यों अमर सुधा छोड़ के विष को गटक रहे।
क्यों मोक्ष धाम त्याग रहँट में लटक रहे॥
क्या दुख तुझे मंजूर गर्भ जन्म मरण को॥२॥
तन मन कि आग से भला निशियाम जल रहे।
इतने भि असह् दुःख पे नहिं चेत कर रहे॥
ये देह ताप रूप जीव को तपा रही॥३॥
तन मन से हो उपराम देह में अराम क्या।
जो सुख तुम्हें दिखाय उसे देखो दुःख सा॥
जल्दी से आप आप की थिरता सम्हार जी॥४॥
हनुमान के समान शक्तीको भुला गये।
तो जामवन्त रूप सद्गुरु चेता रहे॥
संसार सिन्धु को फलांग मार पार जी॥५॥
अविकार स्वच्छ मुक्त रूप निरधार हो।
पर जैसे आप रूप हो वैसे सम्हार हो॥
फिर देर कर रहे हो क्यों अवसर नशा रही॥६॥
देखो तो आज काल्ह में मरना जरूर है।
जल्दी से पंथ तय करो निज देश दूर है॥
तन आज ही छुट जायगा ये खौफ करो जी॥७॥
दिन रैन स्थिति वो देह दुख विचारिये।
जो हो गया सो हो गया पे अब सम्हारिये॥
दुर्भावना क लक्ष हिये से निकार जी॥८॥
अभिलाष दास फिर से देह में न आइये।
अंतिम विजय विराग का डंका बजाइये॥
सद्गुरु कबीर देव जी सूरत अधार को॥९॥

१५२. पद

भुला दूँ तुम्हें मैं तो बालकपना है।
मगर तू मुझे ना भुलाना गुरूवर ॥ टेक ॥
मंद बुद्धि पामर कुटिल, केकी केक समान।
मान भोग बहु चाह उर, महा अंध अज्ञान ॥
सकल भाँति से मैं अपावन महा हूँ।
लगी मोह निद्रा जगाना गुरूवर ॥१॥
पाप अमित कृत मोर प्रभु,कहि न जात हिय खोल।
जानत अन्तर नाथ तुम, क्षण क्षण मन भव डोल ॥
बहा जा रहा हूँ मनोधार में मैं।
अपने चरण में लगाना गुरूवर ॥२॥
देह मान अरु भोग हित, चूकों बारम्बार।
प्रीति प्रतीति न रीति कछु, नहिं प्रभु भक्ति तुम्हार।
मेरे बालपन पर नहीं ध्यान देकर।
पड़ा दास पग में निभाना गुरूवर ॥३॥
जैसे नारी प्रसव दुख भूलि विषय लवलीन।
तैसे जग दुख भूलि के, फिर फिर होउँ विलीन ॥
पड़े खानि वो बानि के बीच स्वामी।
जरा दृष्टि करके उठाना गुरूवर ॥४॥
चाँदहि के चातक विपुल, चातक चाँदहि एक।
मेरे सम तेरे अधिक तेरे सम मम एक ॥
मेरे दीन जीवन के सूरत प्रभू हो।
ये अभिलाष मेरा पुराना गुरूवर ॥५॥

१५३. पद

भला आपको छोड़ जाऊँ कहाँ मैं।
तुम्हीं ही बता दो बिराना सहारा ॥टेक॥
मात पिता गृह दार में, बहु दुख धारचों नाथ।
तेहि दुख से मोहि काढ़ि के, तुमहीं लायो नाथ॥
तुम्हारे सहारे खुली दृष्टि मेरी।
तो है आज तेरे सिवा को हमारा ॥१॥
आँखी तू फूटे नहीं, जो प्रभु प्रेम न रोय।
पापी उर नहिं फाटता, गुरु से नेह विगोय॥
जगत सिन्धु में बस हमारे अधारे।
तुम्हीं प्राण रक्षक दिलों से पियारा ॥२॥
मीत मिले मुझको विपुल, तुम सम मिला न कोय।
जहर देह मन हरण करि अमृत शांति समोय॥
तभी भी अगर जो मैं उपकार भूलूँ।
तो है कौन पापी हमें तज परारा ॥३॥
अन्तरयामी नाथ हो, बहुत कहों मैं काह।
मिलन छुटन तन धर्म है बसिये उर के माह॥
मलिन दीन अभिलाष के देव सूरत।
तुम्हें त्याग कर ना हमारा गुजारा ॥४॥

१५४. पद

सकल संत गुरु से यही माँगना है।
बनी भूल मेरी क्षमा ही करेंगे॥ टेक॥
पाप वासना से भरो, उर अनादि से नाथ।
अहे अचरमों कुछ नहीं, भूल चूक को गात॥

भुलाकर हमारे जो अपराध सारे।
शरण में लगा कर दया ही करेंगे ॥ १ ॥
रोवत ठेलत मात-पितु, गारी दे दुतकार।
तबहूँ जननीजनक अति,हर्षित सुतकर प्यार॥
तथा बाल बुद्धी मेरी जान करके।
पिता-मातु हो प्रभु सहारा करेंगे ॥ २ ॥
दुखिया मैं अब तक रहा, विषय भोग में नीच।
साधु गुरू आपी सभी, कियो आपने बीच॥
महा नीच श्रेणी के हूँ तुच्छ सेवक।
दुखी जान कर नाथ करुणा करेंगे ॥ ३ ॥
अंह कुटिलता दम्भ उर, मान भोग के हेत।
ताते तब भक्ती छुटी, कीजे साधु सचेत॥
भला या बुरा आप ही का हूँ स्वामी।
ये अभिलाष पग में गुजारा करेंगे ॥ ४ ॥

१५५. पद

मनोमय भँवर में पड़ी नाथ नैया।
जरा कर सहारा किनारा लगा दो ॥ टेक ॥
काम वासना अतुल जल, विषय नदी गम्भीर।
तृष्णा प्रबल तरंग अरु, शोक मोह को तीर॥
कठिन फन्द आवागमन के दुखों से।
सदा हित प्रभूजी अभय अब बना दो ॥ १ ॥
जैसे पंकज पत्र जल, जैसे मोती ओस।
तैसे तन धन जन अथिर, मिथ्या जग को जोश॥
क्रिया शील संसार दुखमय स्वपन से।
छुड़ाकर हमें अब हमी में मिला दो ॥ २ ॥

मैं अनादि से अति दुखी, काल चक्र के माँहि।
दै अवलम्ब बचाइये, गहि गरीब की बाँहि॥
जलन जवत तन मन विषय से हटा कर।
परम नित्य अविचल परख में बसा दो॥ ३॥
बार बार अति दीन ह्वै, विनवों तव पद कंज।
नाथ बचाओ बेगि मोहि, करि दारुण दुख गंज॥
यही एक आशा लगी तव चरण में।
ये अभिलाष का मोह बन्धन छुड़ा दो॥ ४॥

१५६. पद

विषय की अगिन से मुझे अब बचालो।
दया कर दयालू शरण में लगा लो॥ टेक॥
यद्यपि तिय तन विष प्रबल, लखत तदपि सुख मान।
विषय मद्य पी मन मत्यो, सूझ न लाभ कि हान॥
प्रभू जी गड़े हैं प्रबल काम काँटे।
हमारे हृदय से उसे अब निकालो॥ १॥
जन्म मरण त्रय ताप अरु, सब दुख मूल है काम।
सो प्राणहु से प्रिय अधिक, कैसे मिले अराम॥
छुड़ा कर तिसे अब परम दुःखकारी।
प्रभू जी हमें अब अकामी बनालो॥ २॥
मैं नालायक मन्द मति, विषय रूप निज जान।
भ्रमत रह्यो नित काम वन, ज्यों पी भंग अजान॥
करो दृष्टि दाया खुले आँख मेरी।
स्वतः पंथ में अब हमें भी लगालो॥ ३॥

डारि वमन विषयान कहं, फिर न लखौं तेहि ओर।
काम जीति विजयी बनूं, यह प्रण कीजै मोर॥
रहें अब शरण में तुम्हारे आजीवन।
ये अभिलाष मेरा गुरुजी पुरा दो॥ ४॥

१५७. पद

न कोई हमारा न हम हैं किसी के।
ये दो दिन के जीवन वो दो दिन क मेला॥ टेक॥

जग चंचल क्षण थिर नहीं, ज्यों पंथी को मेल।
देखत ही बुझ जायँगे, ज्यों दीपक घटि तेल॥
किसे अब कहूँ मैं अपना पराया।
तमाशा जगत है मनोमय क खेला॥१॥

आज कहें तेरो सभी, मात पिता सुतदार।
मन मानी भोगहु विपुल, सुख सम्पति घर बार॥
मगर तीन दिन में, सभी तो छुटेंगे।
सो जायँगे परलोक में खुद अकेला॥२॥

राजपाट गजराज धन, यौवन विद्या रूप।
सब ठाटो माटी मिल्यो, बिन सत्संग स्वरूप॥
चले ऐंठते ऐंठते धर्म छोड़े।
मिले खाक में एक दिन अन्त बेला॥३॥

जगत स्वप्न झूठो निपट, किमि लालच करि भूल?
तजहु प्रीति जग रीति की, गुरु पद गहु सुख मूल॥
जगी भाग मेरी गहे सो परम पद।
भये थीर अभिलाष तज के दुहेला॥४॥

१५८. पद

जय जय सद्‌गुरु कब्बीर प्रभू मम प्यारे।
चरणों में शीश तुम्हारे ॥टेक।
थे भटक रहे विषया बन में,
बहु तीक्षण काँट चुभे तन में।
हा हाय हाय में बीत रहे दिन सारे ॥१॥ चरणों में०
तम अंधकार में भान मिले,
बहते सागर में यान मिले।
अति पीड़ित रोग में वैद्य मिले सुख कारे ॥२॥ चरणों में०
मन से सब मद को हरण किये,
जीवन वैराग्य सो भरण किये।
नित अक्षय कोष बीजक धन दे टकसारे ॥३॥ चरणों में०
जीवन मेरा सुखमय होवे,
मन रुज सुख आशा क्षय होवे।
तव ज्ञान यान पे चढ़ के हूँ भव पारे ॥४॥ चरणों में०
सनमुख दुख दृष्टि महान रहे,
वैराग्य चढ़ा यह शान रहे।
अभिलाष रहे मुक्ति पद में यकतारे ॥५॥ चरणों में०

१५९. पद

कुछ भक्ति विवेक सु अंग नहीं जेहि तन में,
वे जीव अहें बचपन में ॥टेक॥
कोई युवा वृद्ध नर नारी हो,
पढ़ अपढ़ वो पंडित भारी हो।
मैं कौन जवत यह क्या है नहीं जहन में ॥१॥ वे जीव०

बहु यन्त्र मशीने रच दीन्हा,
विज्ञान क बहु शोधन कीन्हा।
नहिं ज्ञान हुआ मैं द्रष्टा खुद चेतन में ॥२॥ वे जीव०
धन द्रव्य कमा के बहुत भरे,
नहिं सन्त सेव गुरु भक्ति जुरे।
सब बृथा हुआ बहु कोष भरे महलन में॥३॥ वे जीव०
बहु सुन्दर रूप सुदेर मिला,
नारी सुत बन्धू गेह मिला।
नहिं त्याग हुआ विष भोग विरति नहिं मन में॥४॥वे जीव०
बहु जाति वर्ण में ऊँच हुए,
प्रभुता पाकर अभिमान किए।
नहिं सन्त चरण में पड़े वृथा ते जन में ॥५॥ वे जीव०
बालकवत निशिदिन खेल रचे,
तन भोग भोग में रचे पचे।
परमार्थ नेत्र नहिं खुले कुबुद्धि सघन में ॥६॥ वे जीव०
सतसंग में जिनका नेह नहीं,
पारख गुरुवर में प्रेम नहीं।
अभिलाष नहीं सद्ग्रन्थ पठन पाठन में ॥७॥ वे जीव०

१६०. पद

बहु बार जन्म ले ले कर के तू आया।
पर जानि न निज को पाया ॥टेक॥
यह मेरा है यह तेरा है, प्रिय विषय भोग मन घेरा है।
सब सुख का घर तू जान लिया यह काया ॥१॥ पर जानि०
सूरज वो चन्द्र ग्रहण जाने, ब्रह्माण्ड क्रिया बहु अनुमाने।

है व्याप्त जक्तमें ब्रह्म अविद्या माया ॥२॥ पर जानि०
चौदह विद्या षट् शास्त्र पढ़े, रण में जीते बहु लड़े भिड़े।
हो गये विश्वमें विदित नाम बहु जाया ।३॥ पर जानि०
भू मण्डल का नक्सा जाना,
जापान फ्रान्स वो मुलताना।
ऐसे ऐसे में आयू रत्न गँवाया ॥ ४ ॥ पर जानि०॥
जिसके जाने सब दुःख टले, त्र्यताप भोग आरण्य जले।
ऐसे शुभ पारख भूमिको तूने पाया ॥५॥ पर जानि०
इस नर तन में चेतो प्रानी,
जल्दी आवो तजि मन मानी।
निर्बन्ध करो जीवन अपना दिन आया ॥६॥ परजानि०
ऐसा दिन फिर नहिं आयेगा, जो चूकेगा पछितायेगा।
अभिलाष बनालो मानव तन शुभ काया ॥७॥ पर जानि०

१६१. पद

हम छोड़ि जगत की आश रहें निरधारा,
ऐसा ही ध्येय हमारा ॥ टेक ॥
कोइ बोल ठोलकर हँसी करे,
स्तुति निन्दा अपमान धरे।
हम मोक्ष मार्ग में चलें सुलक्ष सम्हारा ॥१॥ ऐसा हो०
अरि मित्र न कोई मेरा हो,
मन स्थिर साँझ सबेरा हो।
यक रस निज पद में शांत रहूँ मन पारा ॥२॥ ऐसा हो०
चल विचल भोग मन प्रानी हैं,
निज २ मन बश जग जानी है।

जग-रागत्यागवैराग्य गहूँ गत भारा ॥३॥ ऐसा हो०
सुख आसक्ती के तजने में,
गुरुपद भक्ती के लगने में।
नितचावचपट से गहूँत्यागसुख सारा ॥४॥ ऐसा हो०
जितना कर्त्तव्य हमारा हो,
निज स्थिति सेतु सहारा हो।
हो पूरण सब अभिलाष गुरू आधारा ॥५॥ ऐसा हो०

१६२. पद

रहब हम अपने अविचल देश ॥टेक॥
मिलन वियोग न दुख सुख चंचल,
नहिं कुछ कर्म कलेश।
तीन ताप जहं रोग न ब्याधी,
नहिं मनगति लवलेश ॥ १ ॥
ना कुछ गर्ज न इच्छा आशा,
नहिं तृष्णा आवेश।
परबश दीन कभी नहिं कछुवो,
स्वबश स्वतन्त्र रहेश ॥ २ ॥
लेन देन आवन अरु जावन,
हर्ष शोक जग भेष।
तन मन जगत अभाव जहाँ सब,
चेतन शुद्ध वशेष ॥ ३ ॥
बहुत काल अविचल सुख,
खोज्यो नहिं पायों भरमेश।
सो अब मिला न तेहि को,
छोड़ों जावे प्राण भलेश ॥ ४ ॥

चंचल छोड़ि अचल जब पायों,
केहि हित सहों कलेश।
है अभिलाष न अब कुछ बाकी,
आपै आप हमेश ॥ ५ ॥

१६३. पद

तन धन धाम क्षणहिं में छूटी ।टेक॥
जहि तन इन्द्रिय में भ्रमि भूल्यो, सो काँचा घट फूटी।
नारि पूत मित सगा सहोदर, सबसे नाता टूटी ॥१
कौड़ी कौड़ी माया जोड़्यों, धर्म भक्ति से रूठी।
नहिं छेदाम जावै संग तेरे, जियत मरत सब लूटी ॥२
पक्का महल भरोठा कोठा, सुख सम्पति बहु जूटी।
नौकर दास हुजूरी हाजिर, पलक झपत सब छूटी ॥३
प्रभुता मान बड़ाई विद्या, सपन खेल सब झूठी।
अब अभिलाष लहो अविचलपद, तनधनजगसे रूठी ॥४

१६४. पद

हमारे मन आशा काहे धरो ॥ टेक ॥
देह गुजर प्रारब्ध से हो हैं, बिन चितवन करो।
निज तन सेवा निजकर नीको, यहि बिधि स्ववश खरो ॥१
सेवक मित्र देह के रक्षक, सबही विलग परो।
जड़ सृष्टी परदेश दूरि सब, तू खुद अज अमरो ।२
दमिनि दमक चमक यह तनकी, क्षणमें बिनशिजरो।
कौन गाफिली में तू भूलो, सब जग विवश भरो ॥३
यहि जग में आपन कोइ नाहीं, नहिं सुख को डगरो।
तजिपरदेश चलो अपने घर, सुख अभिलाष करो ॥४

१६५. पद

भजन करो बन्दे जग बिसराय ।। टेक ।।

घर की नारि घरहिं में रहि हैं,
सुत मरघट तक जाय ।
माता पिता अरु सगा सहोदर,
जहँ तहँ होय बिलखाय ।। १ ।।
जगत भेष अरु मान बड़ाई,
गाँव देश छुटि जाय ।
स्वप्न समान उभय दिन जीवन,
काह परयो बौराय ।। २ ।।
चारों तत्व तत्व में मिलिहैं,
देह नाम बिनशाय ।
करम विवश योनिन में भरमो,
जन्म मरण दुख दाय ।। ३ ।।
अजर अमर अविनाशी अक्रिय,
मुक्त शांत तू आय ।
अविचल सदा एकरस अमृत,
नाहक जग भरमाय ।। ४ ।।
ना कुछ मिलै न बिछुड़ै तेरो,
अघट स्वरूप सदाय ।
त्यागि मनोमय पारख धारों,
चंचलता मिटि जाय ।। ५ ।।
मान भोग विद्या बहु वाणी,
तन मन धन नशि जाय ।

सबहीं त्यागि गहो पारख पद,
　　　　दुख अभिलाष बिलाय ॥ ६ ॥

१६६. पद

नहिं कछु काम जगत में मेरा ॥ टेक ॥

चाहे मिले चहे कोइ छूटे,
　　　　चहे जाय जेहि घेरा ।
देह वस्तु प्राणी सब बिलगै,
　　　　लाभ हानि केहि केरा । १ ॥
चाहे प्रेम करे कोई माने,
　　　　सकल भाँति कहि तेरा ।
चाहे रूठि जाय सब दिन को,
　　　　करि अपमान घनेरा ॥ २ ॥
जड़ सृष्टी सब चंचल देखो,
　　　　नहिं कछु स्ववश अथेरा ।
मेरो अजर अमर अविनाशी,
　　　　अविचल धाम बसेरा ॥ ३ ॥
जो जो भास सामने होवे,
　　　　सब स्वप्ना को रेरा ।
जाग्रत भयो भास तजि भासिक,
　　　　भो अभिलाष सबेरा ॥ ४ ॥

१६७. पद

भूलि रह्यो निज बटिया,
　　　　सो गुरु बिन कौन सुझावे ॥ टेक ॥

देवी देवता भूत भवानी,
स्वाँग रच्यों नित नटिया ॥ १ ॥
मात पिता कुल कुटुम्ब सहोदर,
फँसत मीन जिमि कटिया ॥ २ ॥
खानि बानि दुइ जाल प्रबल है,
ताहि को मान फँसतिया ॥ ३ ॥
काम क्रोध मद लोभ भयावन,
तेहि बिच होत सँसतिया ॥ ४ ॥
भटकत फिरत गिरत मग आतुर,
अन्त न होत विपतिया ॥ ५ ॥
इतने में साहेबसुरतगुरु मिलिगये,
दियो निज बोध विरतिया ॥ ६ ॥
बोध विराग सुधामृत पायों,
मिटि गयो जग उत्पतिया ॥ ७ ॥
यह उपकार सन्त गुरुवर के,
भयो अमर शुभ गतिया ॥ ८ ॥
त्वै अभिलाष हुलास हृदय अति,
गुरु गुण गाओं दिन रतिया ॥ ९ ॥

१६८. पद

बीजक हमारा प्यारा, मन से नहीं भुलावे।
जीवन के यक सहारा, सद्गुरु कबीर भावे ॥टेक
खानी वो बानि बन्धनं, संसार में प्रबल है।
तिस बन्ध से छुड़ाकर, स्थिर परख प्रखावे ॥१॥

सब वेद शास्त्र बानी, अज्ञान ज्ञान सानी।
चिज्जड़ पिछान करके, बीजक बिलग बतावे ॥२॥
पूरण प्रकाश टीका, तिरजा अमोल मणि जो।
अध्यास नाश करके, स्थिति स्वतः करावे ॥३॥
उपकार क्या कहूँ मैं, बीजक कबीर प्रभु का।
दिल जानता हि होगा, मति अल्प क्या सुनावे ॥४॥
जड़ सृष्टि देह सुख जो, भ्रम भास ब्रह्म बानी।
सबसे पृथक अमानी, पारख प्रकाश पावे ॥५॥
सूरत प्रभु कि दाया, यह दिव्य ज्ञान पाया।
सद्गुरु कबीर बीजक, अभिलाष मन बसावे ॥६॥

१६९. पद

सन्तों का उपकार अपार।
ऋणी रहेगा यह संसार। टेक॥

दुराचरण से शीघ्र छुड़ा के,
सदाचरण की सीख बता के।
पापी से पापी मानव को,
देव बना देते दानव को॥
सद्गुण दे दुर्गुण करि छार, ऋणी रहेगा यह संसार ॥१

कोटि कोटि विज्ञान विकास,
बोध बिना कैसे दुख नाश।
धन सुत भोग राज नारी से,
जो न मिलै दुनिया सारी से॥
सो सुख परम मोक्ष दातार, ऋणी रहेगा·····॥२

सन्तों के निर्बाह भार से,
भारत दीन नहीं विचार से।
नाच सिनेमा व्यसन विलास,
घूस ठगी चोरी छल त्रास॥
इन सबसे भारत लाचार, ऋणी रहेगा······॥३
सन्तों का है ज्ञान अनन्त,
तिसका फल है मोक्ष महन्त।
तन निर्बाह तुच्छ अति अल्प,
गृही जनों से होता स्वल्प॥
को कर सकता प्रति उपकार, ऋणी रहेगा······॥४
साधु भेष में जो ठग नीच,
तिनको देख लहै मत मीच।
कंकर संग कंचन मत डार,
त्यागि असन्त सन्त संग धार॥
करले अपना जीवन सार, ऋणी रहेगा······॥५
सन्त शिक्ष जो माने कोय,
व्यर्थ हर्ज खर्च नहि होय।
तृष्णा त्यागि परम सुख पाय,
लोक और परलोक बनाय॥
नित सन्तुष्ट शान्त निरधार, ऋणी रहेगा······॥६
तज दो भौतिक पक्ष विकार,
जड़ से भिन्न जीव अविकार।
कर्म शुभाशुभ वश भव झूल,
सन्त ज्ञान से दुख निर्मूल॥
नित अभिलाष सन्त गुण धार, ऋणी रहेगा······॥७

१७०. पद

सो अब हम सदा सन्त संगत करेंगे।
गहें ज्ञान संसार भव से तरेंगे ॥टेक॥
कुटिल क्रोध इर्षा वो चोरी जुवारी।
नशा नाच हिंसा वो व्यभिचार गारी॥
सकल अवगुणों की सफाई करेंगे।
सो अब हम सदा सन्त संगत करेंगे॥ १ ॥
उपन्यास संगीत अखबार नाना।
कभी ना पढ़ेंगें भ्रमिक ग्रन्थ नाना॥
पठन पाठ सद्ग्रन्थ का नित करेंगे।
सो अब हम सदा सन्त संगत करेंगे॥ २॥
पिता मात भ्राता सगे मित्र नारी।
सभी स्वप्नवत् देह धन नाशकारी॥
भजन एक ही सार सोई धरेंगे।
सो अब हम सदा सन्त संगत करेंगे॥ ३॥
बसेंगे सदा सन्त के पास जाकर।
करें भक्ति सेवा अहं मन मिटाकर॥
परख सन्त रहनी हृदय आचरगें।
सो अब हम सदा सन्त संगत करेंगे॥ ४॥
दया शील संतोष निर्मद गरीबी।
गहें सादगी त्याग फैसन अमीरी॥
विषय से हटा मन कुसंगत तजेंगे।
सो अब हम सदा सन्त संगत करेंगे॥ ५॥

सकल पिण्ड ब्रह्माण्ड तन मन उपाधी।
सभी का जनैया मैं चेतन अनादी॥
जगत वासना त्याग मुक्ती लहेंगे।
सो अब हम सदा सन्त संगत करेंगे॥ ६॥

जगत स्वप्नवत अन्त में छूट जाये।
इसी से प्रथम त्याग में शांति आये॥
निराधार अभिलाष अविचल रहेंगे।
सो अब हम सदा सन्त संगत करेंगे॥ ७॥

अन्य-पद

१. पद

भजन बिन बीतल तीनों पना रे ॥टेक॥

बाल युवा वृद्धापन देखो,
ज्ञान बिना पशुवत है बना रे ॥१॥

खेल खाल कीचड़ धूरी में,
लेट पेट कर गुजरे दिना रे ॥२॥

ज्वान भये विषया मद माते,
निशदिन जारिन प्रेम सना रे ॥३॥

वृद्ध भये तन काँपन लागे,
नैन दिखे नहिं कान सुना रे ॥४॥

सुत पुत्रिन के मोह छोह में,
जग व्यवहार के जाल तना रे ॥५॥

मात पिता वही पाठ पढ़ाये,
जेहि ते दुःखहि बढ़त मना रे ॥६॥

चोरी हिंसा विषय रत पामर,
ईर्षा मान छल क्रोध हना रे ॥७॥

निन्दा गाली मिथ्या भाषण,
तन मन बच के दोष घना रे ॥८॥

सुख हित नर उपाय करि नाना,
शुभ अरु अशुभ के कर्म ठना रे ॥९॥

सूरत सतगुरु ज्ञान बिना नर,
पावत कभी न मोक्ष जना रे ॥१०॥

२. पद

चेतो प्यारे उमर सब बीती ॥ टेक ॥
खेल खाय बालापन गुजरे,
तरुण गये विषयारस रीती ॥१॥
वृद्ध भये अब बनत न कछु भी,
कुल कुटुम्ब सब छोड़िन प्रीती ॥२॥
भक्ति धरम जेहि कारण छोड़े,
करि अभिमान चले अनरीती ॥३॥
अन्त समय कोई साथ न जावै,
कर्म किये तस भोग करीती ॥४॥
"सूरतदास" भजन अब करिये,
है संसार सपन की रीती ॥५॥

३. पद

मन इन्द्रिन के झटका बचै कोइ बीर ॥ टेक ॥
छली धूर्त ठग काम अरि डाकू,
जीवन करत अधीर ॥१॥
सावधान सो ज्ञान खड्ग लै,
लड़ि जीतत कोइ बीर ॥२॥
इन्द्रिन घाट स्वभाव विषय रत,
बहत सदा जस नीर ॥३॥
विरति भाव गहि पार होत जन,
गुरु पद को गहि तीर ॥४॥

अभय साँच दिल साहस नित नव,
तजि सब फिक्र फकीर ॥५॥
सम दम संयम नियम निरत जो,
सोई साधु गम्भीर ॥६॥
भक्ति विवेक बिराग अभ्यास बल,
ठहरि रहै जो अखीर ॥७॥
सूरत स्वतः स्वरूप में स्थिति,
छूटै सकल भव पीर ॥८॥

४. पद

परम विरागी जग सुख त्यागी,
आज मिले बड़ भागी जी ॥ १ ॥
सहित प्रेम सब सेवक विनवत,
गुरु चरणन चित लागी जी ॥ २ ॥
चरण धोय चरणामृत पीकर,
दिल की तपन बुझानी जी ॥ ३ ॥
महा प्रसाद गुरु सन्त को पाकर,
हन्ता रहित अदागी जी ॥ ४ ॥
परम सौभाग्य आज गुरु दर्शन,
नमों नमों पद लागी जी ॥ ५ ॥
बोध प्रदान कीन्हेंव गुरु स्वामी,
पार कियो भव त्यागी जी ॥ ६ ॥
साहेब कबीर बोधक गुरु साहेब,
सन्त समान पद पागी जी ॥ ७ ॥

दीन जानि गुरु शरण लगायो,
सूरत दास बड़ भागी जी ॥ ८ ॥

५. पद

परम सौभाग्य आज हम सबकी,
सन्त गुरू जो पधारे जी ॥ १ ॥
दर्शन दे सब कष्ट निवारे,
जीवन सफल कराये जी ॥ २ ॥
जड़ चेतन को परिचय देकर,
सबही भरम हटाये जी ॥ ३ ॥
अजर अमर अविनाशी चेतन,
हृदय माँहि लखाये जी ॥ ४ ॥
तत्त्व चार कारण अरु कारज,
निर्जिव भिन्न प्रखाये जी ॥ ५ ॥
कर्ता रहित अनादि हैं दोनों,
मेल से देह बनाये जी ॥ ६ ॥
भाग्य उदय गुरु बोध मिले अब,
संशय दूर बहाये जी ॥ ७ ॥
गुरु विवेक के चरण कमल गहि,
सूरत शरण रहाये जी ॥ ८ ॥

६. पद

रहना नहि देश बिराना है।
यह संसार कागज की पुड़िया,
बूंद पड़े घुल जाना है ॥ १ ॥

यह संसार काँटों की बाड़ी,
उलझ उलझ मर जाना है ॥ २ ॥
यह संसार झाड़ अरु झाँखर,
आग लगे जर जाना है ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है ॥ ४ ॥

७. पद

सुल्ताना बलख बुखारे दा ॥
शाही तजकर लिया फकीरी,
सद्गुरु नाम पियारे दा ॥ टेक ॥
तब थे खाते लुकमा उमदा,
मिसरी कन्द छुहारे दा।
अब तो रूखा सूखा टूका,
खाते साँझ सकारे दा ॥ १ ॥
जा तन पहने खासा मलमल,
तीन टंक नौ तारे दा।
अबतो बोझ उठावन लागे,
गुद्दड़ दस मन भारे दा ॥ २ ॥
चुनि-चुनि कलियाँ सेज बिछाते,
फूलों न्यारे-न्यारे दा।
अब धरती पर सोवन लागे,
कंकड़ नहीं बुहारे दा ॥ ३ ॥
जिनके संग कटक दल बादल,
झण्डा जरी किनारे दा।

कहें कबीर सुनो भाई साधो,
फक्कड़ हुआ अखारे दा ॥ ४ ॥

८. पद

ऐश के सामान सब इक दिन पड़े रह जायँगे।
यार मेरी लाश पर, रोते खड़े रह जायँगे ॥टेक॥
ये फकत अपने ही ऊपर,
बात कुछ छेड़ी नहीं।
बादशाहों के भी ये,
झण्डे गड़े रह जायँगे ॥ १ ॥
जिनकी शोहरत की जहाँ में,
शोर है चारों तरफ।
उनकी ताजों में भी ये,
हीरे जड़े रह जायँगे ॥ २ ॥
मालोजर घर कुछ भी तेरा,
साथ जावेगा नहीं।
ताक में रक्खे ये,
सोने के कड़े रह जायँगे ॥ ३ ॥
हा ! सितम नरतनको पा,
सत्संग कुछ कीन्हा नहीं।
रूप के दिल में यही अरमा,
भरे रह जायँगे ॥ ४ ॥

९. पद

मत बाँधो गठरिया अपयश के ॥ टेक ॥

धरम छोड़ि अधरम को धायो,
नैया डुबायो जनम भरि कै ॥ १ ॥
भाई बन्धु परिवार कुटुम्ब सब,
ये सब अपने मतलब कै ॥ २ ॥
ज्वानी युवा घटा घहरानी,
है बदनामी जनम भर कै ॥ ३ ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो,
निकला श्वास नहीं वशि कै ॥ ४ ॥

१०. पद

चलत बिरियाँ हमका ओढ़ावें चदरिया ॥टेक॥
प्रान राम जब निकसन लागे,
उलटि गई दोउ नैन पुतरिया।
भीतर से जब बाहर लाये,
छूटिगई सब महल अटरिया॥
चार जने मिलि खाट उठाइन,
रोवत लै चलें डगर डगरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
संग चली वह सूखी लकड़िया॥

११. पद

या जग अन्धा, मैं काको समझाओं।
इक दुइ होयँ उन्हें समझाओं,
सबहिं भुलान पेट कै धन्धा॥
पानी कै घोड़ा पवन असवरवा,
ढरकि परै जस ओस कै बुन्दा॥

गहरी नदिया अगम बहै धरवा,
खेवन हारा पड़िगा फन्दा ॥
घर की वस्तु निकट नहिं आवत,
दियना बारि कै ढूढ़त अन्धा ॥
लागी आग सकल बन जरिगा,
बिनगुरु ज्ञान भटकिगा बन्दा ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो,
इकदिन जाय लँगोटी झार बंदा ।

१२. पद

भजन कब करिबो जनम सिरान ।
गर्भवास में बहु दुख पायो, बाहर आय भुलान ।
बालापन तो खेल गँवायो, तरुनाई अभिमान ॥
वृद्ध भये तन काँपन लाग्यो, शिर धुनि धुनि पछितान ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जम के हाथ बिकान ॥

१३. पद

खलक सब रैन का सबना ।
समझ मन कोई नहीं अपना ॥
कठिन है मोह की धारा ।
बहा सब जात संसारा ॥
घड़ा ज्यों नीर का फूटा ।
पत्र ज्यों डार से टूटा ॥
ऐसे नर जात जिन्दगानी ।
अजहुँ तो चेत अभिमानी ॥

निरखि मत भूल तन गोरा।
जगत में जीवना थोरा ॥
तजो मद लोभ चतुराई।
रहो निःशंक जग माहीं ॥
सजन परिवार सुत दारा।
सभी एक रोज ह्वै न्यारा ॥
निकसि जब प्राण जावेंगे।
कोई नहिं काम आवेंगे ॥
सदा जिन जानि यह देही।
लगा निज रूप से नेही ॥
कहत कब्बीर अविनाशी।
लिये यम काल की फाँसी ॥

१४. पद

बीत गये दीन भजन बिना।
बाल अवस्था खेल गँवाई,
जब ज्वानी तब नारि तनारे ॥
जाके कारन मूल गँवायो,
अजहुँ न गई मन की तृष्ना रे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
पार उतर गये सन्त जना रे ॥

❀ प्रार्थना ❀

मेरे मन में बस जावे, मेरे तन में बस जावे।
हे सद्गुरु तुम्हारे, सद्ज्ञान आचरन ॥टेक॥
कीड़े से हस्ती लेकर, कोई भी प्राणियों के।
नहिं भूल के दुखाऊँ, तन मन तथा वचन ॥ १ ॥
दीनों पे दया पालूँ, समता धरूँ सभी में।
ममता वो स्वार्थ तजकर, परमार्थ की लगन ॥ २ ॥
सब धर्म मजहबों के, मानव समान समझूँ।
नहिं पक्ष द्वेष वो कुतर्क, का करूँ जतन ॥ ३ ॥
चोरी व काम त्यागूँ, संग्रह अधिक से भागूँ।
भय त्यागकर सभी का, सत्पथ करूं गमन ॥ ४ ॥
जिभ्या का स्वाद त्यागूँ, पाँचों विषय विरागूँ।
होके उदास तन से, मन से करूँ भजन ॥ ५ ॥
आलस प्रमाद डारूँ, पुरुषार्थ से न हारूँ।
अपने को अब सुधारूँ, पाया अमोल तन ॥ ६ ॥
प्रमदा को काल जानूँ, अवनति कुसंग से मानूँ।
होके असंग अथवा, सत्संग में रमन ॥ ७ ॥
मुक्ती के साज सारे, धर लूं स्व-आचरन में।
तजि राग द्वेष चिन्तन, स्थिति प्रबुद्ध घन ॥ ८ ॥
अभिलाष तन वो धन के, होके विरक्त जन से।
लूं मुक्ति लाभ-जीवन, छूटे जनम मरन ॥ ९ ॥

श्री अभिलाषदास कृत अन्य सद्ग्रन्थ

१—बीजक सटीक (पारख प्रबोधिनी टीका)—शब्दार्थ, भावार्थ, व्याख्या एवं अन्तर कथायें। पक्की जिल्द प्लास्टिक कवर सहित।

२—पंचग्रन्थी टीका— ,,

३—विवेक प्रकाश सटीक—ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सदाचार, स्त्री-शिक्षा, गृहस्थी-शिक्षा आदि अनेक धार्मिक प्रसंगों से यह ग्रंथ सम्पन्न है। इसमें सभी विषयों को समझने के लिये लगभग १२५ दृष्टान्त दिये गये हैं। बीच-बीच में सौ के लगभग भजन, बन्दना, चेतावनी हैं। यह सर्वोपयोगी है। उत्तम (ग्लेज) कागज, पौने आठसौ पृष्ठों की पक्की जिल्द।

४—बीजक शिक्षा-सद्गुरु कबीर के बीजक के पदों का इसमें संकलन करके उसपर सरल टीका व्याख्या की गयी है। बीच-बीच में अनेकों दृष्टान्त, भजन, चेतावनी आदि हैं। ग्रन्थ अनूठा शिक्षाप्रद है। चिकना कागज, लगभग सात सौ पृष्ठों की पक्की जिल्द।

५—रहनि प्रबोधिनी सटीक-इसमें पदों की सरल टीका, फिर उस पर २१७ प्रश्नोत्तर-सामान्य से उच्चतर विषयों पर विषद विवेचन है। कल्याणसाधन के चौसठ सद्गुण सदाचारों की व्याख्या है। ग्रन्थ अत्यन्त सुरुचिकर है। उत्तम कागज, पौने पाँच सौ पृष्ठों की पक्की जिल्द।

६-गीतासार-गीताके ३२६ श्लोकों पर सरलटीका, व्याख्या एवं आलोचना। ग्लेज कागज, पक्की जिल्द।

७—**बोधसार सटीक**—छः प्रकरणों में सरल टीका, सौ से ऊपर चित्ताकर्षक दृष्टान्त, अत्यन्त सुरुचिकर ग्रन्थ। ग्लेज कागज।

८—**कबीर अमृतवाणी सटीक**—सद्गुरु कबीर साहेब की बारह सौ से भी अधिक साखियाँ, उस पर सरल टीका। इकसठ (६१) विषयों पर विशद विवेचन। ग्लेज कागज।

९—**कबीर परिचय टीका**—३४६ साखियों एवं ११ शब्दों का शब्दार्थ, भावार्थ संख्यायुक्त सरल टीका। उत्तम कागज, पक्की जिल्द।

१०—**कल्याण पथ**—इसमें ५४ स्वतन्त्र लेख हैं, यह कल्याण-इच्छुक साधकों के लिये परमोपयोगी है।

११—**मानसमणि सटीक**-रामायण के तेईस (२३) पात्रों-श्रीरामजी, श्री भरतजी आदि के जीवन प्रवचन से शिक्षाओं का संकलन किया गया है। मूल-पदों का सरल अर्थ करके सर्वसाधारणोपयोगी बनाया गया है।

१२—**ब्रह्मचर्य जीवन**—ग्यारह अध्यायों तथा सैकड़ों प्रसंगों में।

१३—**सरल शिक्षा**—धर्मोपदेशक तीस लेख, चाणक्य नीति, विदुरनीति, भर्तृहरिनीति, आदि के बारह सौ से अधिक संकलित वचन।

१४-**सन्तसम्राट सद्गुरु कबीर**—४८ गणमान्य

विद्वानों के विचार एवं बीजक सटीक की भूमिका।

१५—**वैराग्य संजीवनी**—वैराग्य वर्द्धक आकर्षक छन्दों में, बारह प्रकरणों के सहित, अन्त में गायन करने योग्य पचीस पद, पक्की जिल्द।

१६—**जगन्मीमांसा**—यह दार्शनिक ग्रन्थ है। इसमें वेद, उपनिषद्, पुराण, कुरान, बाइबिल, विकासवाद आदि के सृष्टि-उत्पत्तिक्रम पर आलोचनायें प्रस्तुत करके सृष्टि-उत्पत्ति के भ्रम का निवारण किया गया है और जगत को अनादि सिद्ध किया गया है।

१७—**तुलसीपंचामृत सटीक**—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के 'सतसई', 'दोहावली', कवितावली', 'विनयपत्रिका' और वैराग्यसंदीपनी—इन पाँच ग्रन्थों के उपदेशात्मक पदों का संग्रह करके सरल टीका कर दी गई है। धर्मनीति सभी प्रकार की सुरुचिकर शिक्षायें हैं।

१८—**स्त्री-बाल शिक्षा**—स्त्री बालकों के लिये परमोपयोगी। पीहर ससुराल में स्त्रियों को कैसा बर्ताव करना चाहिये ? माता-पिता, सास-ससुर आदि के साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिये—इन बातों को अनेक दृष्टांतों एवं प्रकरणों में सरलतापूर्वक बताया गया है।

१९—**गुरु पारखबोध सटीक**—अनेक शंकाओं का समाधान।

मुद्रक—विश्वेश्वर प्रेस, बुलानाला, वाराणसी।
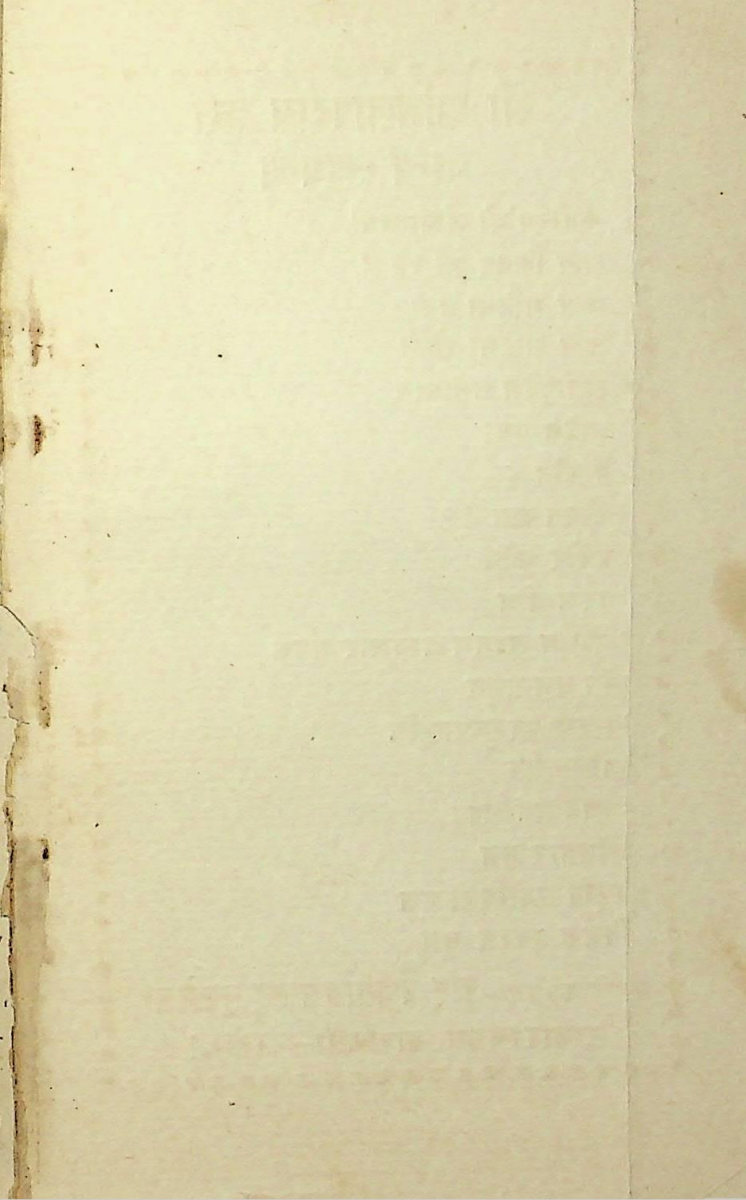
श्री अभिलाषदास कृत
अन्य सद्ग्रन्थ

कबीरपंथी जीवनचर्या
आप किधर जा रहे हैं
सन्त महिमा बड़ी
सन्त महिमा छोटी
हितोपदेश समाधान
आदेश प्रभा
मैं कौन हूँ
जीवन क्या है ?
कबीर कौन
सरल बोध
श्रीराम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
संत वचनामृत
पारख पद पुष्पाञ्जलि
जीवनगीत
भजन प्रवेशिका
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल
विवेक प्रकाश मूल